www.thearyasamaj.org

VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2012 TO 31.12.2014)

६२, ५ अगस्त–2013

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

www.thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

(सञ्चालक)

आदरी सह-सम्पादक :

प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर

होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द

चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल

होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला

पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

www.thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. भवानीलाल भारतीय	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की अमर औपन्यासिक कृति–श्रीकान्त (भाग–1)	लेख	2
श्री सीताराम गुप्ता	अवसर	लेख	8
आचार्य बाबूलाल मीना	श्रीमद्भगवद्गीता की उपादेयता एवं प्रासंगिकता	लेख	9
डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा	धर्मशास्त्रों की आचार–संहिता	लेख	13
डॉ. किशनाराम बिश्नोई	गीता में श्रद्धा की अवधारणा	लेख	17
श्री रमेश गुप्ता	निराकार और साकार भक्ति	लेख	20
डॉ. आशा मेहता	लेनी–देनी	लेख	22
डॉ. कुलदीप सिंह आर्य	वेदोक्त पुरुषार्थ मीमांसा	लेख	24
श्री बलराज	गीता में स्थित–प्रज्ञ के लक्षण	लेख	27
प्रा. एस. डी. गाजरे	वारकरी संप्रदाय	लेख	30
डॉ. राजेश्वर मिश्र	गीता का निष्काम कर्मयोग	लेख	34
डॉ. रामसनेही लाल शर्मा	रामसेतु	कविता	41
सुश्री अरविन्दर कौर	सन्त रविदास एवं मानवीयता	लेख	42
	विविध–समाचार		45
	संस्थान–समाचार		47

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६२ होश्यारपुर, श्रावण २०७०; अगस्त २०१३ संख्या ५

यावती द्यावापृथिवी
यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहम्
ऊर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम्॥
(यजु. 38. 26)

(यावती) जितना (द्यावापृथिवी) भूमि और आकाश का (फैलाव) है और जितना (सप्त) सात (सिन्धवो) नदियों का विस्तार है (सोमाहुति डालने के इस) पात्र का उतना ही (वितस्थिरे) विस्तार है। हे इन्द्र! (मैं इसे) तेरे लिए (ग्रहम्) उठाता हूँ (आहुति के रूप में तुझे भेंट करता हूँ) (यह तेरे सोमरूपी) (ऊर्जा) भोजन से भरपूर (अक्षितम्) भरा हुआ है। (तेरी कृपा से मैं भी) अपने अन्दर (उसी प्रकार) (अक्षितम्) अक्षीणभाव को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

www.thearyasamaj.org

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की अमर औपन्यासिक कृति–श्रीकान्त

–डॉ. भवानीलाल भारतीय (भाग–1)

शरत बाबू के विख्यात उपन्यास श्रीकान्त (बंगला में श्रीकान्तेर भ्रमण काहिनी) से मेरा परिचय किशोरावस्था में ही हो गया था। आयु में मुझ से बड़े मेरे एक आत्मीय कृष्णमुरारी माथुर ने श्रीकान्त का परिचय दिया तथा इस उपन्यास को पढ़ने की प्रेरणा दी। तब से लेकर अब तक इसके अनेक पारायण मैं कर चुका हूँ। मेरी मान्यता है कि शरत की रचनाओं को आप किसी धर्मग्रन्थ की भांति बार–बार पढ़ कर उसका पुनः–पुनः रस ग्रहण कर सकते हैं। यह कथन शरत की किसी अन्य कृति की भांति 'श्रीकान्त' पर भी पूर्णतया घटित होता है। श्रीकान्त का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय हीरा बाग, गिरगांव बम्बई ने प्रकाशित किया था। यह चार भागों में छपा था और प्रत्येक भाग का मूल्य मात्र डेढ़ रुपया था।

'श्रीकान्त' आत्मकथाशैली में लिखा गया बृहदाकार उपन्यास है। वस्तुतः यह प्रकारान्तर से लेखक शरत का आत्मवृत्त ही है, न्यूनाधिक रूप से। शरत की नारी के प्रति सकारात्मक, संवेदनशील तथा करुणायुक्त अभिव्यक्ति इस उपन्यास में आद्यन्त दिखाई पड़ती है। यह नारी–पात्र बहुल उपन्यास है। यहां अन्नदा दीदी, राजलक्ष्मी, अभया तथा कमललता जैसे प्रधान नारीपात्रों के अतिरिक्त सुनन्दा, मालती आदि गौण नारीपात्र भी लेखक की अशेष सहानुभूति के साथ चित्रित हुए हैं।

जैसा कि हमें विदित है शरत की बचपन तथा किशोरवय बिहार के भागलपुर शहर में अपनी ननिहाल में व्यतीत हुई। उन दिनों बिहार बंगाल का ही भाग था और यहां के जन–जीवन पर बंगला–संस्कृति का प्रच्छन्न प्रभाव दिखाई देता था। लेखक की मान्यता है कि दो पैरों से आदमी घूम–फिर तो सकता है किन्तु दो हाथ होने पर भी लिखना उतना सहज नहीं है, और सत्य तथा किञ्चित् कल्पना का समावेश कर आत्मकथा शैली में उपन्यास लिखना तो और भी कठिन है। 'श्रीकान्त' का आरम्भ नायक के बचपन में ननिहाल में रह कर की गई शरारतों तथा निर्द्वन्द्व भाव से प्रकृति की क्रोड़ में विचरण के वर्णन से आरम्भ होता है। यहां उसे एक अन्य किशोर इन्द्रनाथ का सान्निध्य व मैत्री प्राप्त होती है। शरत के प्रामाणिक ज़ीवनी–लेखक विष्णु प्रभाकर के अनुसार इन्द्रनाथ कल्पित पात्र नहीं है। उसके जैसे गुण, कर्म, स्वभाव वाले एक किशोर से लेखक की मैत्री बचपन में हुई थी। लेखक ने श्रीकान्त के बचपन के उल्लास तथा स्वच्छन्द वृत्ति को दर्शाने के लिए अनेक गम्भीर तथा

www.thearyasamaj.org

हलके-फुल्के प्रसंगों की अवतारणा की है। बहुरूपिये का सिंह का वेश बनाकर आना और मंझले भैया का उसे 'दि रायल बंगाल टाइगर' कह कर वातावरण को भयसंकुल बनाने जैसे प्रसंगों को लेखक ने चतुराई से अंकित किया है। इनसे हास्य रस का सहज उद्रेक हुआ है।

श्रीकान्त के एडवेंचर्स का साथी इन्द्रनाथ भी कैसा विचित्र प्राणी है ? निर्भीक किन्तु अटल ईश्वर-विश्वासी। मृत्यु की अनिवार्यता को सहज भाव से स्वीकार करने वाला इन्द्रनाथ बार-बार कहता है – 'मरना तो एक दिन होगा ही' मृत्यु की फिलासफी का बखान करने वाला गम्भीर दार्शनिक भी इस अपरिहार्य क्षण की सत्यता को इतने सहज भाव से अभिव्यक्त नहीं करता। उसका अपने 'राम' में भी कैसा दृढ़ विश्वास है? इन्द्र की मान्यता है कि राम का नाम सारे दु:खों एवं कष्टों से बचाने की रामबाण औषधि है। कितने सहज भाव से वह कहता है – "**तीन बार राम नाम लेने से किसका साहस है जो पास आये।**" बड़े-बड़े भक्त और धार्मिक वृत्ति के पुरुष भी इन्द्रनाथ जैसी आस्तिकता कहां प्राप्त कर सके हैं? इन्द्रनाथ के मुंह से यदा-कदा शाश्वत सत्य सहज भाव से मुखरित होता रहता है। जब गंगा में बहते एक मृत शिशु को जलचरों का भक्ष्य बनने से बचाने के लिए इन्द्रनाथ ने अपनी नौका के पृष्ठ भाग में उस शव को रखा और श्रीकान्त ने इस पर आपत्ति की तो इन्द्र सहज भाव से बोल उठा– '**मुर्दे की भी कोई जात होती है रे।**' तब कथानायक को मानना पड़ा कि इन्द्रनाथ का यह कथन अपने में एक प्रखर सत्य को छिपाये है। वह तो यहां तक कहता है कि इन्द्र ने इस छोटी उम्र में सत्य का साक्षात्कार कर लिया था।

इन्द्रनाथ के साथ रहते ही श्रीकान्त का मुसलमान संपेरे से ब्याही अन्नदा दीदी का परिचय होता है। शरत की नारीचरित मीमांसा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव अन्नदा दीदी है। अन्नदा ने अपने पति को पुन: पाया किन्तु तब जब वह अपने अपराधबोध का शिकार होकर पहले गृहत्यागी हुआ, धर्म बदल कर मुसलमान बना और संपेरा बन कर पेट पालने लगा। अन्नदा को भी विवश होकर इसी संपेरे मुस्लमान पति को अपनाना पड़ा और स्वधर्म त्याग करना पड़ा। किन्तु अपने पति के प्रति अनन्य अनुराग के कारण अन्नदा दीदी किसी सती सावित्री से कम नहीं है। तभी तो श्रीकान्त कहता है "**मेरी दीदी के भाग्य में इतनी विडम्बना क्यों लिख दी कि जिसका आसन सीता, सावित्री आदि सतियों के समीप होना चाहिए था उसे कुलटा समझा गया।**" और तभी शरत ने नारी के प्रति जो धारणा बनाई वह एक शाश्वत सत्य के रूप में उनके ही शब्दों में व्यक्त हुई – "**स्त्री के कलंक पर मैं आसानी से विश्वास नहीं करता।**" इस तथ्य को लेखक ने इसी उपन्यास में राजलक्ष्मी, अभया तथा वैष्णवी कमललता के प्रसंगों को लिख कर प्रमाणित किया है।

www.thearyasamaj.org

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की अमर औपन्यासिक कृति–श्रीकान्त

इस नायिका प्रधान उपन्यास में प्रधान नारी-पात्र राजलक्ष्मी है। राजलक्ष्मी तथा श्रीकान्त के अर्द्ध मुकुलित प्रेम को हम 'प्लैटोनिक लव' कह सकते हैं। राजलक्ष्मी श्रीकान्त की बाल्यसहचरी है जिसने मात्र नौ वर्ष की आयु में फूलों के अभाव में करौंदों की माला गूंथ कर अपने बाल प्रियतम के गले में डाल दी थी और उसे अपना वर चुन लिया था। यह अनोखा बालम भी कितना भोला था जो करौंदों की माला में निहित लड़की के भाव को न समझ कर उन्हें खा गया। अब वर्षों बाद राजलक्ष्मी की भेंट किसी बिगड़े दिल राजकुमार की महफिल में श्रीकान्त से होती है जहां वह स्वयं एक नर्तकी-गायिका की भूमिका को जीने वाली रूपाजीवा के रूप में इस महफिल की शोभा बनी बैठी है। राजलक्ष्मी ने तो अपने प्रिय को देखते ही पहचान लिया जब कि श्रीकान्त को बहुत बाद में पता चला कि जो 'बाई जी' यहां अपनी कला का प्रदर्शन कर रही है वह बचपन में उसे करौंदों की माला पहना कर उसका पतिरूप में वरण करने वाली राजलक्ष्मी ही है।

राजलक्ष्मी की करुणापूर्ण कहानी पुनः भारतीय नारी की विडम्बना को ही दर्शाती है। इसे लेकर लेखक ने बंगाल के कुलीन हिन्दुओं में अपनी बेटी के लिए किसी कुलीन वर को तलाशने की अनिवार्य किन्तु क्रूर प्रथा की ओर संकेत किया है। यदि अपनी जाति और वंश जैसा ही कुलीन वर न मिले तो लड़की को किसी कुलीन किन्तु लोभी बूढ़े के गले मंढ दिये जाने में माता-पिता को संकोच नहीं होता। यही हाल राजलक्ष्मी और उसकी बहिन सुरलक्ष्मी का हुआ। कुलीन विवाहों की विडम्बना भी कैसी कि पहले तो वृद्ध दूल्हे महाशय को लड़की का पिता यथेच्छा धन देकर अपना दामाद बनने के लिए राजी करता है। पुनः विवाह वेदी में मंत्रोच्चारण-पूर्वक कन्या का कौमार्य उतार कर अपनी प्रचुर दक्षिणा लेकर वह बूढ़ा वर सदा के लिए विवाहिता को अपने पिता के घर रोता छोड़ कर चला जाता है। कुलीन प्रथा के इस अभिशाप की इतिश्री यहीं नहीं होती। एक नहीं अनेक कुलीन कन्याओं को सुहागन बनाने वाला यह दूल्हा अपनी प्राप्य मोटी रकम वसूल कर जब विवाह के रंगमंच से विलीन होता तो वह जिन्दगी भर अपनी उस व्याहता को बिदा कराने के लिए कभी ससुराल नहीं आता। सती (?) विवाहिता इस नाममात्र के पति का नाम लेकर ही अपना जीवन समाप्त कर देती है। जिसे अनन्त अत्याचारों ने भारतीय नारी के जीवन में अशेष अभिशापों की वृष्टि की थी।

इस उपन्यास का अधिकांश कलेवर श्रीकान्त-राजलक्ष्मी के प्रेम-सम्बन्धों तथा उनकी प्रत्यक्ष-परोक्ष अभिव्यक्ति में ही समाप्त हुआ है। राजलक्ष्मी भी इस तथ्य को क्षण भर के लिए नहीं भूली थी कि करौंदों की माला प्रिय के गले में डाल कर उसने जो श्रीकान्त से शाश्वत सम्बन्ध बनाया था वह अविच्छिन्न है और रहेगा। चाहे सचमुच का दाम्पत्य सम्बन्ध वह नहीं बना पाई

www.thearyasamaj.org

किन्तु बीमार पड़ने पर श्रीकान्त की सेवा करने के अधिकार से उसे कौन वंचित कर सकता है? इस लक्ष्मी के प्रति श्रीकान्त ने भी अपने हार्दिक भावों को चाहे स्पष्ट रूप से व्यक्त न किया हो किन्तु अवसर आने पर वह यह कहना नहीं भूलता–''**पृथ्वी की एक वस्तु पर मुझे लोभ है और वह हो तुम।**'' राजलक्ष्मी के अनन्य अनुराग और त्याग की तुलना में स्वयं की अपदार्थता को श्रीकान्त समझता है, तभी तो वह कहता है– ''**मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। रूप, गुण, विद्या, बुद्धि, स्नेह और सौजन्य से पूर्ण जो धन मुझे बिना मांगे मिल गया है, उसकी तुलना नहीं हो सकती।**'' इसी विश्वास के सहारे वह आजीवन राजलक्ष्मी पर निर्भर रहा।

श्रीकान्त के प्रति अपने अदम्य आकर्षण को स्वीकार करने में राजलक्ष्मी को कभी संकोच या लज्जा का अनुभव नहीं हुआ। यहां तक कि वह श्रीकान्त के बाह्य सौन्दर्य की कशिश को भी स्वीकार करती है– ''**निद्रा में तुम्हारे चेहरे की ओर देख कर आंखें हटा ही न सकी। इससे पहले यह क्यों नहीं दिखाई पड़ा कि यह कितना सुन्दर है। सोचा यदि तुम्हें प्रेम करना पाप है तो पुण्य की मुझे आवश्यकता नहीं।**'' कहने को तो श्रीकान्त ने वैष्णवी कमललता को भी निकटता से देखा था किन्तु वैष्णवपने की सच्ची अनुभूति उसे राजलक्ष्मी में ही हुई।

''**सच्ची वैष्णव सहनशीलता का नमूना केवल तुम्हारे ही पास है।**'' राजलक्ष्मी के निश्छल, अकपट, समर्पणशील प्रेम की उत्कटता को अनुभव कर श्रीकान्त ने यथार्थ ही कहा था–''**हृदय का विनिमय नर-नारी की अत्यन्त साधारण घटना है, संसार में नित्य होता रहता है, इसमें कुछ विशेषता नहीं। फिर भी यह दान देना और लेना ही व्यक्ति विशेष के जीवन का अवलम्बन बन कर ऐसे विचित्र विस्मय और सौन्दर्य को उद्भासित करता है जिसकी महिमा युग-युग तक मनुष्य के मन को शान्त करके भी समाप्त होना नहीं चाहती।**'' यही कारण है कि राजलक्ष्मी श्रीकान्त के योगक्षेम का वहन करने का सम्पूर्ण दायित्व अपने निर्बल कंधों पर ले लेती है।

समग्र उपन्यास में श्रीकान्त के स्नान, भोजन, औषध, पथ्य के प्रति वह जितनी जागरूक तथा सावधान है वह किसी समर्पणशील सती स्त्री के लिए ही सम्भव है। तभी तो प्रियसेवा में सर्वतोभावेन समर्पित राजलक्ष्मी की इस सेवा तत्परता को देख कर संन्यासी आनन्द कह बैठता है– दीदी, आप इन्हें सचमुच निकम्मा बना डालेंगी। तो उत्तर में लक्ष्मी यही कह कर चुप हो जाती है कि''**मुझे बनाना ही पड़ेगा भाई, जिस विधाता ने इनको गढ़ा है, उसी ने यह प्रबंध कर दिया, कहीं पर कुछ कमी नहीं रखी है।**'' सचमुच राजलक्ष्मी और श्रीकान्त की प्रेम कहानी अकथ कहानी है। इस सेवा प्रसंग में हम राजलक्ष्मी के उस अनन्य सेवक रतन को नहीं भूल सकते जो अपनी मालकिन की सेवा में

www.thearyasamaj.org

जितनी निष्ठा रखता है उतनी ही उसकी सेवा-भावना श्रीकान्त के प्रति भी है। वह श्रीकान्त तथा राजलक्ष्मी के प्रेम की अनन्यता और अन्तरंगता को जानता है।

राजलक्ष्मी शरत की नारी-मीमांसा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव तो है, किन्तु इस मीमांसा की इतिश्री यहां पर ही नहीं होती। श्रीकान्त के नौकरी के लिए बर्मा जाने और जहाज पर उसकी भेंट उस अभया से होना जो अपने पति की तलाश में उस अनजान देश में जाकर उसे लौटा लाना चाहती थी, उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है। स्मरण रहे कि श्रीकान्त में स्वयं की छवि को उकेरने वाले शरत खुद बर्मा रेलवे के एकाउन्ट्स विभाग में कार्य कर चुके थे। तब तक बर्मा भारत का ही एक प्रदेश था तथा वहां आने-जाने में किसी प्रकार की बाधा भारत के नागरिकों को नहीं होती थी। यही कारण है कि बर्मा में रहने वाले नौकरी-पेशा मध्यवित्तीय भारतीयों तथा वहां के कारखानों में काम करने वाले हिन्दुस्तानी श्रमिकों के पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन की अच्छाइयों, बुराइयों, उनके अभाव-अभियोगों से शरत बाबू भली भांति परिचित थे।

बर्मा में बसे हिन्दुस्तानियों के चेहरों के कई संस्करण 'श्रीकान्त' में दिखाई देते हैं। एक है जहाज की यात्री टगर वैष्णवी जो अपने से छोटी जात के नंद मिस्त्री के साथ घर बसा कर, उसकी पर्यंकशायिनी बन कर भी अपनी वैष्णवी ठसक को नहीं छोड़ती और पदे-पदे मिस्त्री को अपमानित करने का कोई मौका हाथ से नहीं जाने देती। किन्तु अभया की कहानी कुछ भिन्न है। उसके पति ने रंगून में रहते किसी बर्मी स्त्री को अपने घर में रख लिया है। अभया को अपने पति के इस अमर्यादित आचरण की उतनी चिन्ता नहीं है, यहां तक कि वह पति के घर में अपनी बर्मी सौत के साथ भी सहअस्तित्व की भावना से रहने के लिए तैयार है। वह तो उस भारत देश की सती नारी है जहां हिन्दू-महिला प्रसन्नता से अपने कोढ़ी पतिदेव को कंधों पर बिठा कर वेश्या के घर पहुँचा देती थी। किन्तु सहन करने की भी कोई हद होती है।

सौत के साथ रहने के लिए तैयार पतिप्राणा अभया को जब शारीरिक ताड़ना मिलती है तो उसका धैर्य जवाब दे देता है। पति के हाथों अपनी पिटाई के चिह्न श्रीकान्त को दिखा कर वह कहती है– "**श्रीकान्त बाबू, यह तो मेरे सतीधर्म का साधारण पुरस्कार है। वे मेरे स्वामी हैं और मैं हूँ उनकी विवाहिता स्त्री। यह उसी का चिह्न है।**" और तब विद्रोहिणी नारी का आक्रोश फूट पड़ता है– "**मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि जब पति केवल बेंत के ज़ोर से विवाहिता स्त्री के अधिकारों को छीन लेता है और अंधेरी रात में घर से बाहर निकाल देता है तो उसके बाद भी विवाह के वैदिक मंत्रों के जोर से पत्नी का उत्तरदायित्व क्या बना रहता है?**" विद्रोह की यह वाणी और भी मुखर होती है– "**एक मुझ से विवाह के मंत्र पढ़वा लिए गए थे– वे ही क्या मेरे जीवन के एकमात्र सत्य हैं और सब**

www.thearyasamaj.org

झूठ।'' हिन्दू नारी की दुर्दशा एवं विडम्बना कितनी भयावह है उसे अभया के मुँह से ही सुनें- **''सब जातियों में, सब धर्मों में इस अत्याचार की रोकथाम है। मैं हिन्दू के घर जन्मी, इसी से मेरे लिए सभी दिशाएं बंद हो गईं क्यों ? श्रीकान्त बाबू जवाब दीजिए।''**

अभया से जब ये अत्याचार सहन नहीं हुए तो उसका विद्रोही मन कृत्रिम बंधनों को तोड़ बैठा। जिस नज़दीकी रिश्तेदार रोहिणी बाबू को अपना यात्रा सहायक बना कर वह रंगून ले आई उसे ही अपना दूसरा पति बनाने में उसको कोई संकोच नहीं हुआ। वह स्पष्ट कहती है- **''इतना होने पर भी उन्हीं के पास रखेली, वेश्या की तरह पड़े रहने से मेरा जीवनभर भटकते रहना क्या नारी-जीवन की श्रेष्ठ साधना है। जीवन को लंगड़ा बना कर सती का पद मैं लेना नहीं चाहती।''**

उपनिषद्कालीन सत्यकाम जाबाल के दृष्टान्त को सम्भवतः ध्यान में रख कर अभया ने यह कहने में संकोच नहीं किया- **''हमारे निष्पाप प्रेम की सन्तान मनुष्य के नाते किसी से हीन न होगी, मेरे गर्भ में जन्म लेकर अपना दुर्भाग्य भी न समझेगी।''** अभया की इसी निर्भीक वृत्ति को ध्यान में रख कर श्रीकान्त ने उसे प्रणम्य कहा। पुरुष के हाथों नारी को सतत प्रताड़ित और अपमानित करने का एक जीता-जागता उदाहरण श्रीकान्त ने बर्मा में उस समय देखा जब उसने एक प्रवासी बंगाली को रंगून जाकर किसी बर्मी स्त्री से सम्बन्ध बनाते और तत्काल बाद अपने परिजनों के दबाव में आकर उसी पतिप्राणा बर्मी नारी को प्रताड़ित, प्रवञ्चित तथा छलपूर्वक अपनी किस्मत पर छोड़ कर स्वदेश लौटते देखा। प्रत्यक्षतया यह प्रसंग हास्यजनक कहा जा सकता है जब धोखेबाज इस बंगाली बाबू ने अपनी वाक्चातुरी कहें या शब्दाडम्बर (लफ्फाज़ी) के बल पर अपनी बर्मी प्रेमिका तथा उसकी बहिन के साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया। इस सारे नाटक को देख कर प्रत्यक्षदर्शी श्रीकान्त को भी सोचने के लिए मज़बूर होना पड़ा कि **इस महान पाप में उसका कितना भाग है?** उसके लिए सचमुच यह खेद तथा आश्चर्य का प्रसंग था कि एक कायर पुरुष उस स्त्री के ऊपर वेदना का बोझ लाद कर चकमा देकर चला गया।

(क्रमशः) ....

-3/5, शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

www.thearyasamaj.org

अवसर

–श्री सीताराम गुप्ता

हमारे जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब हम उनका सही इस्तेमाल कर न केवल अपने जीवन को अपेक्षाकृत अधिक आनंदमय बना सकते हैं अपितु समाज और राष्ट्र को भी नई दिशा प्रदान कर सकते हैं लेकिन हम वर्तमान को सुखमय बनाने अथवा उसे पूरी तरह जीने की अपेक्षा भविष्य को सुखमय बनाने के जुगाड़ में ही लगे रहते हैं और इसके लिए कई बार वर्तमान को दुखमय बनाने से भी नहीं चूकते।

एक बार एक व्यक्ति ने घोर तपस्या करके भगवान् को प्रसन्न कर लिया। भगवान् ने उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि जीवन में एक बार सच्चे मन से जो चाहोगे वही हो जायेगा। उस व्यक्ति के जीवन में अनेक अवसर आए जब वह इस वरदान का इस्तेमाल कर अपने जीवन को सुखी बना सकता था लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। कई बार भूखों मरने की नौबत आई लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ। अनेक ऐसे अवसर भी आए जब वह इस वरदान का प्रयोग कर देश की काया पलट कर सकता था अथवा समाज को खुशहाल बना सकता था लेकिन उसने ऐसा भी नहीं किया क्योंकि वह तो मन में कुछ और ही ठाने बैठा था।

वह उस अवसर की तलाश में था जब मौत आएगी और वह अपने वरदान का इस्तेमाल कर अमर हो जाएगा और दुनिया को बता देगा कि प्राप्त वरदान का उसने कितनी बुद्धिमत्ता से इस्तेमाल किया है। लेकिन मौत तो किसी को सोचने का अवसर देती नहीं। मौत ने चुपके से एक दिन उसे आ दबोचा। उस का वरदान धरा का धरा रह गया। कोई कितनी ही कीमती चीज़ क्यों न हो उसका समय पर इस्तेमाल कर लेना ही बुद्धिमानी है नहीं तो बाद में पछताने के सिवाय कुछ हाथ नहीं आता। वर्तमान समय और वर्तमान उपलब्ध अवसर का समय पर उपयोग दोनों का ही भरपूर इस्तेमाल करना बुद्धिमान् व्यक्ति का लक्षण है।

–ए. डी. 106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

www.thearyasamaj.org

श्रीमद्भगवद्गीता की उपादेयता एवं प्रासंगिकता

–आचार्य बाबूलाल मीना

गीता के पढ़ने वाले सभी को यह स्पष्ट है कि गीता में आत्मा–अनात्मा का विवेचन, अनासक्ति योग, यज्ञादि कर्मों की कर्तव्यता, लोकसंग्रह–कर्तव्य, भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगादि तथा अर्जुन के संशय के सर्वथा उच्छेदपूर्वक उसकी सर्वात्मना शरणागति का वर्णन आदि विषय बड़े ही सयुक्तिक, दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। किन्तु इसमें मानव समाज से सम्बन्धित अनेक पहलुओं पर भी भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन के माध्यम से उपदेश करने के कारण गीता में दिया गया उपदेश सार्वभौम तथा सार्वकालिक है। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण और अर्जुन ही हैं। इन दोनों के मध्य होने वाला सीधा संवाद ही गीता का मुख्य अंश है। इसी अंश में अर्जुन के माध्यम से श्रीकृष्ण ने सभी संसारी मनुष्यों के लिए 'कुरुक्षेत्र' के मैदान में उपदेश दिया है।

किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में कर्तव्य–बोध की कविता ही गीता है। परिणामस्वरूप महाभारतकाल से लेकर आज तक कर्तव्याकर्तव्य के विषय में विमूढ़ हुए असंख्य जन का मार्गदर्शन गीता करती चली आ रही है। गीता केवल 'आध्यात्मिक ग्रन्थ' न होकर एक 'नीतिशास्त्र' या 'कर्तव्यशास्त्र' भी है। गीता में श्रीकृष्ण ने सांसारिक कर्तव्य से विमुख होते हुए अर्जुन को इस संसार में रहते हुए ही अपने कर्तव्य को पूरा करने का उपदेश दिया है। संसार से भागकर वन में जाकर तपस्या करने की अपेक्षा संसार में रहते हुए ही अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह करना ही 'गीता' की शिक्षा है। पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों ही वर्गों के विद्वानों ने अपनी–अपनी भाषाओं में 'गीता' का अनुवाद किया है। गीता ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसका संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

भारतीय स्वतन्त्रता–आन्दोलन के समय सक्रिय क्रान्तिकारियों में से सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद बिस्मिल और भाई परमानन्द– जैसे अनेक क्रान्तिकारी 'गीता' से ही प्रेरणा प्राप्त करते हुए फांसी के तख्ते पर झूल गये। बीसवीं शती के विश्वविख्यात भारतीय राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने 'गीता' को आजीवन अपनी दुःख–निवारिणी माता के रूप में स्वीकारा और सराहा। वे कहते हैं– "जब–जब मैं कठिनाईयों से घिर जाता हूँ तब–तब मैं गीता–माता के चरणों में अपना सर नवा देता हूँ। जिस प्रकार माता की गोद में बैठकर पुत्र के सभी कष्ट सहज ही विनष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार गीता–माता की गोद में बैठकर मेरे समस्त दुःख भी सहज ही विनष्ट हो जाते हैं........ आज गीता मेरी 'बाइबिल और कुरान' ही नहीं बल्कि इससे

www.thearyasamaj.org

बढ़कर भी कुछ और है– यह मेरी माता है....... जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और अकेला पड़ने पर मुझे आशा की एक भी किरण नहीं दिखाई देती है, मैं भगवद्गीता के पास लौट जाता हूँ। मुझे कोई श्लोक यहाँ, कोई वहाँ दिख जाता है और मैं तुरन्त घोर संकटों के बीच भी मुस्कराने लगता हूँ।''[1]

आधुनिक युग के महान् संत श्री ज्ञानेश्वर ने गीता को समस्त सुखों की भूमिका ही स्वीकार किया है। वे कहते हैं– ''गीता सब सुखों की नींव है, सिद्धान्त–रत्नों का भण्डार तथा नवरसामृत से परिपूर्ण परमधाम एवं सब विधाओं की मूलभूमि है।''[2] लोकमान्य तिलक ने भी गीता का महत्व **गीतारहस्य** में इन शब्दों में व्यक्त किया है– ''भक्ति और ज्ञान का मेल कराके, इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला और इसके द्वारा संसार से दु:खित मनुष्य को शान्ति देकर, निष्काम कर्तव्य के आचरण में लगा देने वाला, गीता के समान बालबोध ग्रन्थ, संस्कृत की कौन कहे, समस्त संसार के साहित्य में नहीं मिल सकता।''[3]

मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए गीता ज्ञान का आत्मबल अपरिहार्य है अतएव जर्मन के ही अन्य विश्वविश्रुत मनीषी मैक्समूलर का मत है–यदि मुझसे पूछा जाये कि मृत्यु पर विजय के लिए सर्वोत्तम तैयारी क्या है, तो मैं निश्चय ही गीता के जीवन–दर्शन की ओर संकेत करूँगा।[4] स्पष्ट है कि मैक्समूलर के विश्वास में गीता का ज्ञान ही मानव को मृत्यु के भय से उबार कर उसे नित्य अजर–अमर कर सकता है। पाश्चात्य विद्वान् बुक्स की दृष्टि में गीता विश्व के भावी धर्म के लिए भारत का योगदान है।[5] 'गीता' की प्रशंसा करने में पाश्चात्य विद्वान् भी पीछे नहीं हैं। जर्मन विद्वान् 'हम्बोल्ट' ने गीता के प्रति अपनी मान्यता इन शब्दों में प्रकट की है, उनका कथन है कि 'गीता' किसी भी ज्ञात भाषा में, सर्वाधिक सुन्दर और सम्भवत: सच्चे अर्थों में दर्शन का गीत है।[6] इसी प्रकार अमेरिकन सन्त 'थारो', महान्

1. श्रीमद्भगवद्गीता टीका, कर्णसिंह, भूमिका, पृ. 9.
2. श्रीमद्भगवद्गीता टीका, वी. एन. द्विवेदी, भूमिका, पृ. 24.
3. गीतारहस्य, पृ. 1.
4. "If I am asked what is the best preparation for death, I shall certainly point towards the philosophy of Gita". श्रीमद्भगवद्गीता टीका, वी. एन. द्विवेदी, भूमिका, पृ. 23.
5. "Gita is India's contribution to the religion of the world." श्रीमद्भगवद्गीता टीका, वी. एन. द्विवेदी, भूमिका, पृ. 24.
6. "The most beautiful perhaps of only true philosophical song existing in any known tongue". श्रीमद्भगवद्गीता टीका, कर्णसिंह, भूमिका, पृ. 10.

www.thearyasamaj.org

अमेरिकन लेखक 'राल्फ वाल्डो एमर्सन', अंग्रेज विद्वान् 'एल्डुअस हक्सले' आदि अनेक विद्वानों ने भी गीता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में हम कह सकते हैं कि- **''मनुष्य-जीवन के लिए गीता से अधिक जागरूक प्रहरी शायद ही कोई और हो।''**[7]

महाभारत के भीष्म-पर्व के अनुसार गीता में सभी शास्त्रों का सार-तत्व विद्यमान है- **''सर्वशास्त्रमयी गीता''**।[8] श्री वेदव्यास जी ने तो इसे स्वयं पद्मनाभ (नारायण) के मुखकमल से निकला हुआ बताकर यह सिद्ध कर दिया कि गीता स्वयं ब्रह्मा और वेदों से भी बढ़कर है क्योंकि ब्रह्मा, जिस नारायण की नाभि से निकले हुए कमल से प्रकट हुए, साक्षात् नाभि से नहीं, उसी नारायण के दिव्य शरीर के साक्षात् मुख से गीता निकली है। अतः उत्पत्ति स्थान और उत्पत्ति-क्रम की दृष्टि से ब्रह्मा की अपेक्षा गीता का महत्व अधिक है। इसके अतिरिक्त वेदों से भी गीता बढ़कर है क्योंकि वेदों की उत्पत्ति नारायण-पुत्र ब्रह्मा से हुई है और गीता तो साक्षात् नारायण की मुखोद्गता मुख्य पुत्री है। गीता जगत्पावनी मुक्तिदायिनी गंगा से भी बढ़कर है। कारण, गंगा अपने आप चलकर आने वाले और अपने जल में स्नान करने वाले पुरुष को ही तारती है और मुक्त करती है परन्तु गीता तो घर-घर जाकर न केवल उन्हीं को मुक्त करती है जो उसका अध्ययन करते हैं अपितु वह गीता-गंगा में स्नान करने वाले पुरुष को ऐसा सामर्थ्य दे देती है कि वह अपने अतिरिक्त अन्य लोगों को भी तार सकता है, मुक्त कर सकता है-**मुक्तश्चान्यान्विमोचयेत्**।

गीता का गौरव गायत्री से भी बढ़कर है क्योंकि गायत्री-जप से केवल जपकर्ता ही भोग और मोक्ष प्राप्त करता है परन्तु गीता का अभ्यास करने वाला पुरुष तो मुक्तिदाता भगवान् को ही अपने अधीन कर लेता है। वह तरन-तारन बनकर अन्यों के लिए भी मुक्तिद्वार ही खोल देता है।[9] वराह पुराण के अनुसार तो गीता स्वयं भगवान् से भी बढ़कर सिद्ध होती है-

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमगृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रील्लोकान् पालयाम्यहम्॥[10]

इस संदर्भ में माननीय जयदयाल गोयन्दका के सर्वसन्देशात्मक **गीता-माहात्म्य** पर ध्यान देना आवश्यक है। वे लिखते हैं- ''शास्त्रों का अवलोकन और महापुरुषों के वचनों का श्रवण करके मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि संसार में श्रीमद्भगवद्गीता के समान कल्याण के लिए कोई भी उपयोगी ग्रन्थ नहीं है। गीता में ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं, उनमें से कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रुचि और योग्यता के अनुसार करने से मनुष्य का शीघ्र कल्याण हो सकता है।''[11]

---

7. श्रीमद्भगवद्गीता टीका, कर्णसिंह, भूमिका, पृ. 10.
8. महाभारत, भीष्मपर्व, 43/2.
9. गीता, 12/ 7.
10. श्रीमद्भगवद्गीता टीका, वी. एन. द्विवेदी, भूमिका, पृ. 25.
11. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनीटीका, माहात्म्य भूमिका।

www.thearyasamaj.org

इस प्रकार 'गीता' अखण्डकोटिब्रह्माण्ड-नायक, परात्पर, परमब्रह्म, परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द का दिव्य सन्देश है। यह महाभारतरूपी रत्नमयी महामाला का प्रधान देदीप्यमान रत्न है। यह अनेक जन्मों से संसार सागर में निमज्जन करने वाले कलियुग के प्राणियों के उद्धरण हेतु महानौका है। यह विश्व के समस्त प्राणियों की चिरन्तन शान्ति का अनुपम साधन एवं उपनिषद्-साहित्य का सार संग्रह है।

इस गीताशास्त्र के अध्ययन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पुरुष, बालक, युवक, बृद्ध, पुण्यात्मा और पापात्मा आदि मानवमात्र का अधिकार है परन्तु श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के साथ ही। अन्यथा इससे परम गति एवं परम कल्याण की प्राप्ति का लाभ नहीं सिद्ध होगा। यह केवल विरक्त संतों एवं संन्यासियों का ग्रन्थ नहीं है। यह गृहस्थों और बालकों का भी पाठ्य-ग्रन्थ है। बालकों को इसे अवश्य पढ़ाना चाहिये। इसे पढ़कर बाल संन्यासी बन जायेंगे यह समझना बहुत बड़ी भूल है। जिस गीता ने भिक्षा मांगने तक के लिए तैयार एवं क्षात्र-धर्म से विमुख अर्जुन की भी बुद्धि को शुद्ध कर उसे आजीवन श्रेष्ठ गृहस्थ बनाए रखा, वह भला किसी को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध संन्यासी क्यों बनाएगी। अतः जीवन के परम कल्याण के इच्छुक मानवों का यह कर्तव्य है कि वे मोह को त्यागकर अतिशय श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमपूर्वक अर्थ और भाव को समझते हुए गीता का नित्य अध्ययन और मनन स्वयं तो करें ही, साथ ही बालकों को भी इसमें उनकी रुचि उत्पन्न कराते हुए अवश्य पढ़ावें। इसी में मानव के जीवन परिवार, समाज, देश और राष्ट्र का परम कल्याण निहित है। गीता ही वह ग्रन्थ है जिसके कारण भारत जगद्गुरु था, जगद्गुरु है और जगद्गुरु बना रह सकेगा। हम सब गीता के सिद्धान्तों का सर्वथा सर्वदा अनुसरण करते हुए इस सम्मान की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहें।

– द्वारा अमरसिंह कसाना, 41, गणेश नगर, नीयर-मोती डूँगरी, जयपुर (राज०)

www.thearyasamaj.org

धर्मशास्त्रों की आचार-संहिता

-डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

धर्मशास्त्रों में आचार की बहुत महिमा गाई गई है और वहां पर बतलाया गया है कि मनुष्य का प्रथम धर्म आचार ही है। जिस आचार-विचार से दैवी-गुणों की उत्पत्ति एवं अभिवृद्धि हो, उसे सदाचार कहते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा शास्त्र-सम्मत सदाचार का ही पालन किया जाता है। मनु ने सदाचार को धर्म का स्वरूप माना है-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥
(2.12)

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा को प्रिय लगना-ये धर्म के साक्षात् लक्षण हैं। समाज की सच्ची सेवा सद्गुणों के द्वारा ही होती है। अनैतिक कार्य करने वाले अधर्मी व्यक्ति कुछ समय के लिए भले ही पनपते दिखाई दें, पर अन्त में उनका समूल नाश हो जाता है। धर्माचरण, सदाचार का पालन, त्याग, तपस्या एवं तपोवन सेवन भारतीय संस्कृति के मूल हैं। पुराणों का भी उद्घोष है-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
(विष्णुधर्मो. पु. 3.255.44)

अर्थात् धर्म का सार-सर्वस्व यही है कि जो अपनी आत्मा को प्रिय लगे, वही व्यवहार दूसरों के प्रति भी करना चाहिए। जो व्यवहार अपने को प्रतिकूल लगे, वैसा आचरण दूसरों के साथ भी कभी न करें। हमारे धर्मशास्त्रों में व्यक्ति के आचरण-सम्बन्धी जो भी करणीय या अकरणीय कर्त्तव्य बतलाए गए हैं, उनका संक्षिप्त स्वरूप यहां पर दिया जा रहा है-

1. आत्मकल्याण चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह सदा इन्द्रियों को अपने वश में रख कर जितेन्द्रिय बने। मन के वश में न रहकर सदा आत्मा के वश में रहे। क्रोध न करे, सदा बाहर और भीतर से पवित्र रहे और सदा मधुर एवं हितकारी वाणी का प्रयोग करे-

जितेन्द्रियः स्यात् सततं वश्यात्माक्रोधनः शुचिः।
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम्॥
(औशनसस्मृति-3. 15)

2. सत्पुरुष जिस आचरण का स्वयं पालन करते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं तथा उसके अनुमोदन करने का परामर्श देते हैं, वह धर्म है और जिस आचरण की निन्दा करते हैं एवं स्वयं भी उसका अनुपालन नहीं करते, वह अधर्म है-

यं त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो
यं गर्हन्ते सोऽधर्मः। (आप. धर्मसूत्र 7.7.)

3. किसी भी कार्य के सफल हो जाने पर अत्यधिक प्रसन्नता नहीं दिखानी चाहिए। इससे अहंकार का आगमन हो जाता है। अहंकार आने पर व्यक्ति प्रमत्त हो जाता है। ऐसे प्रमत्त व्यक्ति के द्वारा धर्म का अतिक्रमण

www.thearyasamaj.org

हो जाता है, जिससे इस लोक में तो ऐसे व्यक्ति का पतन हो ही जाता है, पर परलोक में भी उसे नरक की प्राप्ति हो जाती है–

हृष्टो दर्पति दृप्तो धर्ममतिक्रामति
धर्मातिक्रमे खलु पुनर्नरकः।

(आप. धर्मसू. 4. 4)

4. माता–पिता और आचार्य – ये तीनों व्यक्ति के अतिगुरु कहलाते हैं। इसलिए सदा इनकी सेवा करनी चाहिए। उनकी बात को सदा मानना चाहिए। सदा उनका प्रिय और हितकारी कार्य करना चाहिए। उनकी आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं करना चाहिए–

त्रयः पुरुषस्याति गुरवो भवन्ति
माता पिता आचार्यश्च।
तेषां नित्यमेव शुश्रूषुणा भवितव्यम्
यत् ते ब्रूयुस्तत् कुर्यात्।
तेषां प्रियहितमाचरेत्
न तैरननुज्ञातः किञ्चिदपि कुर्यात्।

(विष्णुस्मृति अ. 31)

5. जो परायी स्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा सभी प्राणियों को अपने ही समान समझता है, वही वस्तुतः सच्चा आत्मद्रष्टा है–

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

(आप. स्मृति 10.11)

6. जो व्यक्ति देवालय को, संन्यासी को, त्रिदण्डी स्वामी को देखकर उन्हें प्रणाम नहीं करता, वह व्यक्ति प्रायश्चित्त का भागी होता है–

देवप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम्।
नमस्कारं न कुर्वीत प्रायश्चित्ती भवेन्नरः॥

(व्याघ्र० 366)

7. एक हाथ से अभिवादन नहीं करना चाहिए। जो ऐसा करता है, उसका जीवन–भर का किया हुआ पुण्य–फल निष्फल हो जाता है। अतः दोनों हाथों से बहुत ही नम्रता के साथ अभिवादन करना चाहिए–

जन्मप्रभृति यत्किंचित् सुकृतं समुपार्जितम्।
तत्सर्वं निष्फलं याति एकहस्ताभिवादनात्॥

(व्याघ्र० 367)

8. व्यक्ति जो भी दुष्कृत अथवा निन्दनीय कर्म करता है और उससे जो उसका पापफल बनता है, वह पाप उसके अन्न में भी व्याप्त रहता है। अतः ऐसे व्यक्ति का अन्न भी कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए–

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति।
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्॥

(आंगिरस. 58)

9. बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह वही कार्य बार–बार करे, जो मंगलकारक तथा परमकल्याणकारी हो–

हितं श्रेयस्करं भूरि कर्म कार्यं मनीषिभिः।

(लौगाक्षि० पृ. 273)

10. बासी पुष्प तथा बासी जल का प्रयोग देवपूजन में नहीं करना चाहिए। पर, गंगाजल तथा तुलसीदल में बासीपन का दोष नहीं होता–

त्यजेत् पर्युषितं पुष्पं त्यजेत् पर्युषितं जलम्।
न त्यजेज्जाह्नवीतोयं तुलसीदलपङ्कजम्॥

(प्रजा. 108)

www.thearyasamaj.org

11. जो अपने आश्रित हों, ऐसे लोगों का भरण-पोषण करना व्यक्ति का प्रशंसनीय कार्य है। यह कर्म स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला है। आश्रित लोगों को दु:ख पहुँचाना, नरक की प्राप्ति कराने वाला होता है। इस लिए ऐसे आश्रितों की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए-

भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्।
नरकं पीडने चास्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत्॥

(दक्ष० 2.30-31)

12. जो व्यक्ति इस लोक में अनेक व्यक्तियों की जीविका चलाता है, उसी का जीवन सफल है। जो लोग केवल अपना ही पेट भरते हैं, वे जीते-जी मरे हुए के समान हैं। उनका जीना या न जीना एक बराबर है-

जीवत्येकः स लोकेषु बहुभिर्योऽनुजीव्यते।
जीवन्तोऽपि मृताश्चान्ये स्वोदरम्भराः॥

(दक्ष० 2.40)

13. माता, पिता, गुरु, मित्र, विनयशील, उपकारी, दीन, अनाथ तथा साधु-संत महात्माजनों को जो कुछ भी दिया जाता है, वह सफल होता है-

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणी।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दत्तं तु सफलं भवेत्॥

(दक्ष० 3.15)

14. मन, वाणी तथा कर्म से किसी के भी प्रति हिंसा का भाव न रखना, यथार्थ भाषण, चोरी न करना, बाहर और भीतर से पवित्र रहना, इन्द्रिय निग्रह, दान, मन का संयम, दया तथा शान्ति- ये सभी के लिए सामान्य धर्मसाधन हैं-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

(याज्ञ० 5.122)

15. मन, वाणी और कर्म द्वारा सभी प्राणियों के साथ कभी द्रोह न करना, दान और दया का भाव रखना-ये श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है-

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सत्यं धर्मः सनातनः॥

(महाभारत शा. प. 162.21)

16. कल किया जाने वाला कार्य आज ही पूरा कर लेना चाहिए। जिस कार्य को सायंकाल में करना हो, उसे प्रातःकाल में ही कर लेना चाहिए। मृत्यु कभी नहीं देखती कि इस व्यक्ति का कार्य पूरा हुआ है या कि नहीं-

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥

(महाभारत शा. प. 175.15)

17. बड़ा भाई पिता के समान है। पत्नी और पुत्र अपने ही शरीर हैं। सेवक वर्ग अपनी छाया के समान है। बेटी तो और भी अधिक दया की पात्र है-

भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः।
छाया स्वा दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम्॥

(महाभारत शा. प. 243.20)

18. चिरकाल तक सोच-विचार करके ही किसी के साथ मित्रता करनी चाहिए। फिर

www.thearyasamaj.org

जिसे मित्र बना लिया, उसे सहसा नहीं छोड़ना चाहिए। लम्बे समय तक सोच-विचार करके बनाया हुआ जो मित्र होता है, उसी की मित्रता चिरकाल तक टिक पाती है-

चिरेण मित्रं बध्नीयाच्चिरेण च कृतं न त्यजेत्।
चिरेण हि कृतं मित्रं चिरं धारणमर्हति॥

(महाभारत शा. प. 266.69)

19. धर्म का पालन करते हुए जो धन प्राप्त होता है, वही सच्चा धन है। जो धन अधर्म से प्राप्त किया जाता है, उस धन को तो धिक्कार है। संसार में धन की इच्छा से अपने धर्म का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए-

येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण धिगस्तु तान्।
धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद् धनकांक्षया॥

(महा. शा. प. 292. 19)

20. प्रिय वस्तु की प्राप्ति होने पर बहुत अधिक प्रसन्न न होवे, अपने मन के विपरीत कोई कार्य होने पर दुःखी न होवे। अर्थ संकट के आ जाने पर भी व्यक्ति घबराये नहीं। किसी भी अवस्था के आने पर व्यक्ति कभी अपना धर्म न त्यांगे-

प्रिये नातिभृशं हृष्येदप्रिये न च संज्वरेत्।
न मुह्येदर्थकृच्छ्रेषु न च धर्मं परित्यजेत्॥

(महा. वन. प. 207.43)

21. सदाचार की रक्षा सदा यत्नपूर्वक करनी चाहिए। धन तो आता और जाता रहता है। धन का नाश हो जाने पर भी सदाचारी व्यक्ति को कभी छोटा नहीं माना जाता। पर जो सदाचार से भ्रष्ट हो जाते हैं, उन्हें नष्ट-भ्रष्ट ही समझना चाहिए-

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

(महा. उद्योगप. 36.30)

22. व्यक्ति सदा धर्म का ही आचरण करे, अधर्म का नहीं। सदा सत्य ही बोलना चाहिए, असत्य नहीं। सदा दूरदर्शी बनना चाहिए तथा सोच-विचार कर ही कार्य करना चाहिए। सदा उदार बनना चाहिए, संकीर्ण नहीं। सदा परमात्मा पर ही विश्वास रखना चाहिए, उससे भिन्न किसी दूसरी वस्तु पर नहीं-

धर्मं चरत माऽधर्मं सत्यं वदत नानृतम्।
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं परं पश्यत माऽपरम्॥

(वसिष्ठ स्मृ. 30.1)

-साधु आश्रम, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

गीता में श्रद्धा की अवधारणा

–डॉ. किशनाराम बिश्नोई

भारतीय धर्म परम्परा में श्रद्धा को आत्मनिष्ठा का सहज विश्वास बताया गया है। यह सहज विश्वास मनुष्य के अन्तःकरण में स्वतः ही रहता है। मनुष्य को श्रद्धा जागृत करने के लिए कोई अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती है। यह मनुष्य की आन्तरिक स्वीकृति है जो आत्मा के नियमों पर आधारित है जो आत्मा पर आधारित होता है उसमें सहजता स्वतः ही रहती है। इसलिए विश्व के सभी धर्मों में श्रद्धा को विशेष महत्त्व दिया है और खासकर हिन्दूधर्म एवं दर्शन में तो यह आध्यात्मिकता का केन्द्र-बिन्दु है। वेदों और उपनिषदों के बाद श्रद्धा की सबसे ज्यादा व्याख्या श्रीकृष्ण ने गीता में की है। श्रीकृष्ण ने गीता में अनेक आध्यात्मिक रूपों की चर्चा की है उन्होंने जीवन के धार्मिक मूल्यों की अनेकानेक बातें बतायी हैं जिसमें जीव, ब्रह्म, जगत्, माया, योग, कर्म, बुद्धि, स्वभाव, स्वर्ग-नरक, दुःख-सुख, आचारगत नियम, गुरु-आज्ञा, पुनर्जन्म, साधना तथा कर्मबंधन के कारण और निवारण भी बताये हैं। इसके साथ ही उन्होंने ज्ञानयोग, कर्मयोग और बुद्धियोग की विस्तृत समीक्षा की है। अब प्रश्न उठता है कि इन सब बातों की सत्यता का प्रमाण क्या है? क्या पुनर्जन्म प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जा सकता है यदि प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध हो सकता है तो कोई नास्तिक होता ही नहीं। पाणिनि ने पुनर्जन्म को न मानने वाले को नास्तिक तथा मानने वाले को आस्तिक कहा है। इन सब बातों को कैसे सिद्ध किया जाए? पुनर्जन्म के पक्ष में हम जो भी तर्क देंगे, नास्तिक उसके प्रतिपक्ष में अवश्य युक्ति प्रस्तुत कर देगा क्योंकि प्रत्येक तर्क का प्रतितर्क अवश्य होता है। अतः आस्तिकभाव के लिए श्रद्धा ही एकमात्र साधन बच जाता है। मनु ने कहा कि वेद से वे सत्य जाने जाते हैं जिन सत्यों को प्रत्यक्ष अथवा अनुमान द्वारा नहीं जाना जा सकता–

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
तद्विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

इसलिए सभी आस्तिकों को प्रत्यक्ष अथवा अनुमान के अतिरिक्त आगम-प्रमाण भी मानना पड़ता है। साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि आगम-प्रमाण में अनुमान की बात ही क्या, प्रत्यक्ष-प्रमाण का भी दखल नहीं है। प्रश्न होता है कि ऐसे में अनुमान-प्रमाण अर्थात् तर्क का क्या महत्व है? उत्तर है कि तर्क का उपयोग वेद की रक्षा करने के लिए है, न कि वेद का खण्डन करने के लिए। वेद का मण्डन करे तो वह तर्क तो स्तुत्य है, किन्तु वेद का खण्डन करे तो वह तर्क निन्दनीय है। क्योंकि वह हमारी श्रद्धा को ही काट देता है–

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥

www.thearyasamaj.org

डॉ. किशनाराम बिश्नोई

वैदिक धर्म न तो अन्धविश्वासी है न बुद्धि-विरुद्ध। वह तो अच्छे कर्मों की ओर प्रेरित करता है। अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है। यदि हमारा यह विश्वास ही डिग जाये तो हमारा जीवन लक्ष्य से भटक जायेगा। इस विश्वास के बिना तो समाज भी विखण्डित हो जायेगा। आज यही हो रहा है। हम यह देखते हैं कि भ्रष्ट तरीकों से धनार्जन करने वाले फल-फूल रहे हैं और ईमानदारी से रोजी-रोटी का गुज़ारा करना भी मुश्किल हो गया है। ऐसे में ईमानदार व्यक्ति का विश्वास डोल जाता है। लगता है धर्मशास्त्र ढकोसला है। अधर्माचरण से अनिष्ट होना तो दूर प्रत्युत अधर्मी पुरुस्कृत हो रहे हैं। उन्हें पैसा ही नहीं पद और प्रतिष्ठा मिल रही है। फिर धर्माचरण क्यों किया जाये? यह स्थिति कोई नई नहीं है। मनु ने इस स्थिति को देख लिया था और यह घोषणा की थी कि ठीक है कि अधर्म से मनुष्य उन्नति करता है, सारे सुख वैभव भोगता है और अपने साथियों से आगे भी निकल जाता है किन्तु वह समूल जड़ से नष्ट हो जाता है-

अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥

बहुत कठिन है उस मूल को देख पाना जो अधर्माचरण से नष्ट हो जाता है। अर्थ से शरीर और काम से मन पुष्ट और तुष्ट हो जाते हैं किन्तु अधर्मपूर्वक अर्जित अर्थकाम अन्तरात्मा की शांति भंग कर देते हैं। जहां शांति नहीं हैं वहां संसार का समस्त वैभव भी सुख नहीं दे सकता। इसलिए वेदव्यास ने तो धर्म के बिना अर्थ और काम की सिद्धि मानी नहीं। उनका कहना है कि मैं दोनों भुजायें उठाकर कह रहा हूँ। किन्तु मेरी बात कोई सुनता ही नहीं है, धर्म से ही अर्थ और काम की सिद्धि होती है, फिर धर्म का सेवन क्यों नहीं किया जाता?

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किन्न सेव्यते॥

दो मनीषियों के दो विरोधाभासी स्वर हैं। मनु कह रहे हैं अधर्म से सब सुख वैभव मिलता है व्यास कह रहे हैं अर्थ काम की सिद्धि धर्म से ही होती है।

यह समझना होगा कि सरस्वती और लक्ष्मी में अन्तर है। सरस्वती व्यक्ति के व्यक्तित्व में निखार लाती है। लक्ष्मी के चिह्न हैं कि जमीन-जायदाद, धन-दौलत और आभूषण हों किन्तु व्यक्तित्व दीनहीन हो। करोड़ों का बैंक बैलेंस हैं किन्तु शरीर व्याधियों का मन्दिर बना हुआ है और मुख मलीन है। यह लक्ष्मीपति का रूप है। सरस्वतीपुत्र के पास सम्पत्ति इतनी ही है जितने से उसकी आवश्यकता पूरी हो जाये। किन्तु शरीर कान्ति से देदीप्यमान है। अधर्म से व्यक्ति लक्ष्मीपति बन सकता है किन्तु श्रीमान् धर्माचरण से ही बन पाता है। जब किसी करोड़पति के अधर्माचरण का भण्डा फूटता है तो न्यायालय में जाते समय अपना मुख भी वह कपड़े से ढक लेता है। श्रीहीन को मुख दिखाने में लज्जा आती है। यह अधर्माचरण से प्राप्त सुख का स्वरूप है। इसे ही मनु ने जड़ का सूख जाना कहा है। यह हम देख रहे हैं किन्तु फिर

www.thearyasamaj.org

भी यदि अधर्माचरण से लाभ होता दिखाई दे तो मन फिसल ही जाता है। ऐसा क्यों होता है क्योंकि हममें श्रद्धा का अभाव है।

श्रीकृष्ण कहते हैं जो मनुष्य मेरे मत का नित्य श्रद्धायुक्त तथा अनसूयापूर्वक पालन करते हैं। वे ही कर्मबंधन से छूट जाते हैं और जो अनसूयापूर्वक मेरे मत का पालन नहीं करते वे ज्ञान से विमूढ़ होकर मूर्च्छा में रहते हुए नष्ट ही हो जाते हैं–

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः॥

ज्ञानियों का मत है कि कर्म छोड़ देना चाहिए। गीता में इसे सांख्यमत कहा गया है। कर्मवादियों का कहना है कि जब तक जीवन है, कर्म करते ही रहना चाहिए। यह पूर्वमीमांसकों का मत है। इन दोनों ही मतों के समर्थन में श्रुति प्राप्त हो जाती है। श्रीकृष्ण का मत है कि कर्म तो करने चाहिये। किन्तु फल की इच्छा नहीं करनी चाहिये। यही बुद्धियोग है। सांख्यमत कपिल का है, कर्ममार्ग हिरण्यगर्भ का है। बुद्धियोग गीता का है। इस बुद्धियोग में कर्म और ज्ञान दोनों का समन्वय हो जाता है। इसी बात को गीता ने इस रूप में कहा है कि अल्पज्ञानी सांख्य और कर्मयोग को अलग-अलग बताते हैं, बुद्धिमान् लोग नहीं। **सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।** यही भगवान् के मत का वैशिष्ट्य है जिसके संबंध में वे कहते हैं कि साधक को उस मत में श्रद्धा रखनी चाहिये। यद्यपि इस मत का प्रतिपादन श्रीकृष्ण ने पहले युक्तिपूर्वक कर दिया है तथापि कोई भी प्रखर तार्किक उनके मत के विरुद्ध तर्क दे सकता है वस्तुतः तर्क से कुछ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।

श्रद्धा अपने से बड़े के प्रति होती है। गुरु और शास्त्र हमसे ऊपर हैं उनके प्रति श्रद्धा का अर्थ है कि वहां तर्क का उपयोग उनके समर्थन में ही किया जाये। किन्तु बार-बार हमारा मन कुतर्क करता है और हम श्रद्धा से विचलित हो जाते हैं। इसलिए तो यह स्थिति बनती है कि हम धर्म का स्वरूप जानते हुये भी धर्म का आचरण नहीं कर पाते और अधर्म को हेय समझाने पर भी अधर्म से हट नहीं पाते–

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः॥

ऐसे में मन की श्रद्धा को स्थिर बनाने के लिए बुद्धि का सहयोग आवश्यक है। तभी धर्म का अनुष्ठान नित्य हो सकता है और श्रद्धापूर्वक धर्मशास्त्रों की बातों को आचरण में लिया जा सकता है।

–प्रभारी, धार्मिक अध्ययन संस्थान, श्री गुरु जम्भेश्वर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार-125001 (हरियाणा)

www.thearyasamaj.org

निराकार और साकार भक्ति

–श्री रमेश गुप्ता

परब्रह्म ही भगवान् हैं। निर्गुण-निराकार ब्रह्म और सगुण-साकार भगवान् में कोई अन्तर नहीं है। परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्म से ही परिपूर्ण है। शाश्वत धर्म अपरिवर्तनशील है जब कि अशाश्वत धर्म परिवर्तनशील है। शाश्वत धर्म ही सम्पूर्ण धर्मों की आत्मा है। शाश्वत धर्म ही ईश्वर है। स्थूल रूप से परमात्मा, आत्मा और जीवात्मा, ये तीन तत्त्व हैं। परमात्मा हमारे हृदय में निराकार रूप से विराजमान है। पर भक्त की भावना के अनुसार साकार रूप होकर प्रकट हो जाता है।

कबीर जी अपने परमात्मा के निराकार रूप का साक्षात्कार करते हैं, तभी तो कहते हैं, '**घट-घट रहता राम रमैया कटुक वचन मत बोल रे।**' अपने संस्कार, स्वभाव और रुचि के अनुसार किसी को निर्गुण-निराकार रूप प्रिय लगता है और किसी को सगुण-साकार रूप प्रिय लगता है। वृन्दावन के प्रसिद्ध संत उड़िया बाबा निर्गुण-निराकार के उपासक थे। उनके आश्रम में परमप्रिय संत हरिबाबा सगुण-साकार रूप श्री राधा-कृष्ण के स्वरूपों को चंवर डुलाते रहते। दोनों में परस्पर अद्भुत प्रेम था।

श्री रामकृष्ण परमहंस जी तत्कालीन प्रचलित समस्त साधन-प्रणालियों की सिद्धि प्राप्त करने पर भी निर्गुण-निराकार रूप में भी स्थित हो जाते थे। वह सगुण-साकार माँ काली जी के अनन्य भक्त थे। वह कहा करते थे – मैं चीनी नहीं बनना चाहता, चींटी बन कर चीनी का उपभोग करना चाहता हूँ। सगुण-साकार व्यष्टि रूप में भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीनृसिंह, श्रीवामन आदि हैं और वही विराट्रूप में विश्व हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सगुण-साकार रूप ब्रह्म की अभिन्नता करते हुए गीता में स्थान-स्थान पर आये हुए परमतत्त्ववाची ब्रह्म, अविनाशी, अमृत, शाश्वत धर्म और ऐकान्तिक सुख आदि शब्दों के द्वारा निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार की एकता का बोध कराया है।

एक बार संत नामदेव जी महाराज एक योगी के साथ तीर्थयात्रा में थे। रास्ते में उनको प्यास लगी। मार्ग में एक सुन्दर कुआँ बना हुआ था। दोनों के पास कुएँ से पानी निकालने का कोई साधन नहीं था। योगी ने कहा- मैं तो अपने योगबल से कुएँ के अन्दर जाकर पानी पीकर आता हूँ और आपके लिए भी लेता आऊँगा। नामदेव जी ने कहा-आप मेरे लिए कष्ट न करें। आप जायें और पानी पी आवें। मेरे विट्ठल भगवान् को पिलाना होगा, तो मुझे पानी पिला देंगे। निर्गुण-निराकार के उपासक योगी जी अपनी योगसिद्धि से कूप में नीचे गए, जी भरकर

www.thearyasamaj.org

पानी पीया और ऊपर आकर बैठ गए। नामदेव जी अपने इष्ट विट्ठल जी का स्मरण करते रहे। तभी अचानक कुएँ का पानी उफनता हुआ नीचे से ऊपर आकर कुएँ के चारों ओर बहने लगा। नामदेव जी ने उस जल से अपने हाथ-पाँव धोए और जी भरकर अमृत समान जल का पान किया। वह भाव-विभोर होकर भगवान् विट्ठल की करुणा का अनुभव कर अश्रुपात करते हुए भजन करने लगे। यह हुआ सगुण-साकार भक्ति का चमत्कार। दोनों एक ही परमतत्व के उपासक थे।

इस जगत् में दो ही प्रकार के व्यक्ति निश्चिन्त और परमानन्द में मग्न रहते हैं-एक तो भोलाभाला निश्चेष्ट नन्हा सा बालक और दूसरा त्रिगुणातीत महापुरुष। हम बालक को निराकार और महापुरुष को साकार उपासक कह सकते हैं। परमात्मा ही सत्य है, शेष सब असत्य है। अकेले विचरण करना ही श्रेयस्कर है। प्रभु प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन सत्संग है। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं-मुझे तुम्हारे जैसे प्रेमी-भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र, ब्रह्मा, शंकर, भाई बलराम, स्वयं अर्द्धांगिनी लक्ष्मी जी और मेरी अपनी आत्मा भी नहीं है। उद्धव! जब साधक, इन्द्रिय, प्राण, मन को अपने वश में करके अपना चित्त मुझ में लगाने लगता है, मेरी धारणा करने लगता है, तब उसके सामने बहुत सी सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं, उनसे सावधान रहना चाहिए उनका उपयोग केवल प्रभु सेवा के लिए होना चाहिए, अन्यथा किसी प्रकार की स्वार्थ बुद्धि से उनका प्रयोग करने पर निश्चित रूप से अध:पतन हो जाता है। वह परमात्म-प्राप्ति से च्युत हो जाता है।

मानव का परम धर्म प्रभु की निराकार या साकार भक्ति में अपने को पूर्ण समर्पित करना ही है। इसीलिए भगवान् ने अपने भक्तों को सम्पूर्ण गीता के सार में आश्वासन देते हुए कहा-

क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो? (मैं हूँ ना !)
किससे तुम व्यर्थ डरते हो? (मैं हूँ ना !!)
कौन तुम्हें मार सकता है? (मैं हूँ ना !!!)

हम अपनी सारी बागडोर भगवान् के हाथों में सौंप कर निश्चिन्त हो जायें। प्रभु अपने आप सब अच्छा करेंगे। हम यह दृढ़ विश्वास करें कि भगवान् के अलावा हमारा कोई नहीं है। यही सच्चा सहारा है। प्रात:काल उठने पर और रात्रि में सोते समय नित्य यह प्रार्थना करें कि – 'हे नाथ! मैं आपका हूँ और आप मेरे हैं। हे नाथ! मैं आपको कभी भी भूलूँ नहीं।' प्रभु कृपा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। हम समाज में रहें, यह नितान्त आवश्यक है, परन्तु समाज 'हममें' न रहे, इसी बात का ध्यान रखना है।

– 401 कैलाश बिहार, 15/21 सिविल लाइन्स, कानपुर-208001

www.thearyasamaj.org

लेनी-देनी

–डॉ. आशा मेहता

मेरी सहेली निशा एक दिन मुझे जबर्दस्ती वृद्धाश्रम ले गई। उसके जीवन का अब एक ही लक्ष्य बन गया है इन वृद्ध महिलाओं के सुख-दु:ख को बाँटना और उनकी सेवा करना। वृद्धाश्रम की सभी पच्चीस महिलाएँ बेसब्री से निशा का इंतज़ार करती हैं। ये सभी महिलाएं अच्छे परिवारों की हैं पर उनके परिजन उनकी सेवा नहीं करना चाहते इस कारण रात के अंधेरे में उन्हें रोती-बिलखती छोड़ जाते हैं। जिन अपनों के लिए उन्होंने अपनी रातों की नींद त्यागी, सुख छोड़े, वे ही उन्हें लाचारी और कमजोरी की स्थिति में बेसहारा छोड़ कर खुद एशोआराम की ज़िन्दगी इस तरह जीते हैं जैसे कभी वे वृद्ध होंगे ही नहीं।

निशा सभी के बारे में मुझे बताते हुए आगे बढ़ती जा रही थी अचानक उसने बताया कि ये तारा देवी हैं, बहुत शांत, सहनशील और हँसमुख। उनको देखते ही मेरे मुँह से निकला ''नानी जी, आप कैसी हैं?'' वे संबोधन सुनकर जोर से हँसने लगीं और बोली, '' अरी बिटिया, तू कहां से आई है, जो मुझे नानी कहकर बुला रही है।'' ''नानी, आपको देखकर मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा और आपका जन्म-जन्मान्तरों का संबंध है।'' यह सुनते ही उन्होंने मुझे अपनी छाती से लगा लिया। ''वंदना, तुम नानी से बात करो, मैं सबसे मिल कर आती हूँ'' कहकर निशा आगे बढ़ गयी।

''नानी जी मैं आपके परिवार और बच्चों के बारे में जानना चाहती हूँ।'' मेरी बात सुनकर कुछ क्षण वे चुप रहीं फिर धीरे से बोलीं, ''बिटिया, जिस परिवार को मैं दस साल से भूलने की कोशिश कर रही हूँ उसके बारे में बात करने से क्या फायदा?''

''नानी, बच्चे तो आख़िर बच्चे ही होते हैं।''

मेरी बेटी, बच्चे तो उनको कहते हैं जो अपने माता-पिता को ख़ुश रखें, उनका आशीर्वाद लें और उनकी सेवा करें। तुम जानना ही चाहती हों तो सुनो, ''मेरे पति शहर के प्रतिष्ठित उद्योगपति थे। तीन बेटियों और एक बेटे का स्वर्ग जैसा संसार था मेरा। बच्चों को उनकी इच्छानुसार शिक्षा दिलवायी, किसी भी बात में कोई कमी नहीं रखी। तीनों बेटियों का विवाह भी धनी परिवार में करवाया। बेटे की शादी भी उसकी पसंद की लड़की से करवायी। सब कुछ ईश्वर कृपा से अच्छा चल रहा था कि साल भर बाद कार एक्सीडेंट में मेरे पति की मृत्यु हो गयी। मुझ पर तो जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा, डिप्रेशन के साथ-साथ अनेक बीमारियों ने मुझे जकड़ लिया।

www.thearyasamaj.org

डॉ. आशा मेहता

बहू ने साफ शब्दों में बेटे से कह दिया कि मैं आपकी मां की सेवा नहीं कर सकती, या तो माँ इस घर में रहेंगी याँ मैं। बेटे के पास पत्नी की इच्छा पूरी करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं था। मैंने तीनों बेटियों को यह बात बतायी और उनसे आसरा मांगा किन्तु तीनों ने यह कह कर मना कर दिया कि आपको अपने साथ रखकर हम भाई से अपने संबंध नहीं बिगाड़ सकते हैं।

उनकी बातें सुनकर मुझे अपना भविष्य अंधकारमय लगने लगा। क्या यही दिन देखने के लिए मैंने अपने बच्चों को बड़ा किया था? आख़िरकार वह दिन भी आ गया जब बेटे ने अपने असिस्टेंट के साथ मुझे वृद्धाश्रम भिजवा दिया, इस आश्वासन के साथ कि वह हर महीने रुपये समय पर भेज देगा।

मेरे दिल पर इस बात का ऐसा सदमा लगा कि मैं हर पल रोती रहती और किसी से बात भी नहीं करती। कुछ दिनों बाद एक तेजस्वी संत का यहां प्रवचन हुआ। उन्होंने कहा कि "सभी पुराणों और शास्त्रों का सार यही है कि इस जीवन में जो कुछ भी हो रहा है, वह पूर्व जन्म के कर्मों का ही परिणाम है। हमारी संतानें, हमारे रिश्तेदार जो व्यवहार हमारे साथ कर रहे हैं, वह वास्तव में हमारे पिछले जन्म की लेनी-देनी का हिसाब ही है। सुख-दु:ख की यह लेनी-देनी न चाहते हुए भी सबको चुकानी पड़ती है। इसलिए किसी के प्रति मन में कोई गिला-शिकवा नहीं रखना है। बस अपने-आपको खुश रखो और ईश्वर का नाम लो।

बस उसी दिन से मैंने अपने मन को समझाना शुरू कर दिया कि जो कुछ हुआ उसमें किसी का कोई दोष नहीं, हम सभी अपने-अपने हिस्से का अभिनय कर रहे हैं और इस अभिनय में सुख-दु:ख की लेनी-देनी भी निश्चित है।

"आज से आप अकेली नहीं हैं नानी, मैं हूँ ना आपके साथ।"

"नहीं बिटिया, अब तू मुझे सपने मत दिखा, मेरी ज़िन्दगी जैसी निकल रही है, वैसी ही अच्छी है।"

"नानी इसे भी आप लेनी-देनी मान लीजिए।"

"ठीक है बिटिया, जैसी ईश्वर की इच्छा।" कहकर उन्होंने मुझे प्यार से चूम लिया। मैंने महसूस किया कि उनके होठों पर मुस्कुराहट थी, पर आँखें नम होने लगी थीं।

–प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, हरिदेव जोशी राजकीय कन्या महाविद्यालय, बाँसवाड़ा (राज.)

www.thearyasamaj.org

वेदोक्त पुरुषार्थ मीमांसा

–डॉ. कुलदीप सिंह आर्य

वर्तमान में भाग्य एवं पुरुषार्थ एक ज्वलन्त विषय है। अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि संस्कृत का वैदिक वाङ्मय इस विषय में क्या दिशा-निर्देश देता है। आर्यसमाज के संस्थापक वेद-पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती कहते हैं– ''पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इस लिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।''[1] भाग्य के विषय में विभिन्न विद्वानों में मतभेद हो सकते हैं परन्तु पुरुषार्थ समस्त मानव-जाति का शाश्वत अलंकार है, जो कर्त्ता को उसके लक्ष्य तक पहुँचाता है। यजुर्वेद का मन्त्र कहता है– हे मानव! तू कर्म करता हुआ ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा कर। अथर्ववेद का उपदेश है– **कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्याहितः।**[2] यदि कर्म दायें हाथ में है तो सफलता बायें हाथ में निश्चित समझो। सामवेद का मन्त्र निर्देश करता है–

यो जागार तमृचः कामयन्ते,
यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह,
त्वाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥[3]

कर्मशील जागृत व्यक्ति को ही ऋचाएं चाहती हैं, साम कर्मठ व्यक्ति को ही प्राप्त होते हैं सोम को भी वही प्राप्त करते हैं। सृष्टि का आदि संविधान ऋग्वेद है इसका कथन है **अग्निर्वव्रे सुवीर्यम्।**[4] परमात्मा पुरुषार्थी को ही पसन्द करते हैं। संसार में पुरुषार्थ को आधार मानने वाला साहित्य ही सर्वाधिक विवादशून्य है। अतः कर्म, पुरुषार्थ या परिश्रम सभी धर्मों, मतों, विचारधाराओं में प्रधान है इसलिए कर्म ही उपास्य है। नीतिशतक में कर्म के विषय में सुन्दर बात कही गई है कि जिस कर्म ने ब्रह्मा को कुम्हार की भांति जगत् की रचना में लगा दिया। विष्णु को अतिदुःखद दशावतार धारण करने की कठिनाई में डाल दिया है। जिसके मारे शंकर जी हाथ में खप्पर लेकर भीख मांगते फिरते हैं और सूर्य प्रतिदिन आकाश में घूमा करते हैं, उस कर्म को नमस्कार है।[5]

वैदिक साहित्य में प्रमुख रूप से दो प्रकार पुरुषार्थ करने के प्रसंग हैं–

1. इहलौकिक पुरुषार्थ
2. पारलौकिक पुरुषार्थ

---

1. सत्यार्थप्रकाश, पृ. 407
2. अथर्ववेद– 7. 50. 8.
3. ऋ. 5. 44. 14.
4. ऋग्वेद–1. 36. 17.
5. नीतिशतक–95.

www.thearyasamaj.org

1. इहलौकिक पुरुषार्थ –

इस श्रेणी में वे कर्म आते हैं जिनका सम्बन्ध इस लोक से है। जिनके करने से इस संसार में उन्नति, प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य मिलते हैं। यजुर्वेद में कहा है– विद्या और अविद्या दो प्रकार के ज्ञान हैं। विद्या आध्यात्मिक विद्या की परिचायक है और अविद्या लौकिक वैज्ञानिक शारीरिक ज्ञान की। दोनों के फल भी अलग-अलग बताए गए हैं।[6]

अविद्या, शारीरिक ज्ञान एवं पुरुषार्थ से मृत्यु पर विजय प्राप्त हो जाती है और आध्यात्मिक पुरुषार्थ से अमरता। ऋग्वेद का कथन है– इस संसार में आलस्य रहित सहृदय और घोर परिश्रमी मनुष्य ही सफल होते हैं।[7] अथक परिश्रम करने वाले ही सुख पाते हैं।[8]

हे अश्विनौ! पुरुषार्थी विद्वान् ही अन्न समृद्धि पाते हैं।[9] **अयं मे हस्तो भगवान् अयं मे भगवत्तरः।**[10] मेरे दोनों हाथ पुरुषार्थ के कारण भाग्यशाली हैं। कर्म करने वाले को अभीष्ट की प्राप्ति होती है।[11] कारीगर पत्थर पर रगड़कर और आग को तपा कर बाण बनाता है।[12] विद्वान् साफ-सुथरी बुनाई का काम करते हैं।[13] पृथिवी में विशाल धन का कोश है।[14]

कर्मशील मनुष्य सहस्रधारा वाली महान् पृथिवी से धन आदि निकालते हैं।[15] जल में धन का निवास है।[16] जल और सूर्य में विशाल धन है।[17] जल में धन है और यह जीवों के लिए परमोपयोगी है।[18] इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में कर्म के द्वारा इन तत्त्वों से ऐश्वर्यवान् बनने के निर्देश हैं। वेदों में कृषि, जल, अग्नि, वायु आदि पदार्थों में धन का वास बताया गया है। वैदिक वाङ्मय विभिन्न विज्ञान, कला, विद्याएं मानव मात्र को कर्म में रमने का निर्देश देते हैं और इस प्रकार के लौकिक कर्म करने से मानव अपनी आयु सुखपूर्वक भोगता है –

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा
यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।

---

6. यजुर्वेद- 40. 10-11.
7. ऋग्वेद-4.4.12.
8. ऋग्वेद-1.71.3.
9. ऋग्वेद- 7.74.5.
10. ऋग्वेद, 10.60.12.
11. ऋग्वेद – 7.63.4. अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि।
12. ऋग्वेद – 1.25.7.
13. ऋग्वेद–10.130.1.
14. ऋग्वेद- 3.51.5 – पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।
15. ऋग्वेद-10. 74. 4 – मही सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन्।
16. ऋग्वेद – 10. 30. 12 – आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः।
17. ऋग्वेद- 8.68.9 – अप्सु सूर्ये महद्धनम्।
18. ऋग्वेद – 10. 30. 14 – एमा अग्मन् रेवतीर्जीव धन्याः।

www.thearyasamaj.org

संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः
सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥[19]

2. पारलौकिक कर्म–

जिन कर्मों के करने से परलोक सुधरता हो, जो मुक्ति में सहायक कर्म हैं उनकी पारलौकिक कर्म संज्ञा है। जैसे – यज्ञ, दान, योगाभ्यास, तप आदि। **जुहोत प्रचं तिष्ठत।**[20] हे मानव तू यज्ञ द्वारा आध्यात्मिक प्रगति कर।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त।[21] यज्ञकर्त्ता महिमावान् होकर मोक्ष को प्राप्त हुए। **मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते।**[22] यज्ञ मानवोचित कर्म करने वालों के लिए मुक्तिदायक है। यज्ञ देवों को सुख देने वाला साधन है।[23] यज्ञ से अमृततत्त्व के दर्शन होते हैं।[24] यज्ञकर्त्ता पराक्रमी होते हुए धनादि से पुष्ट होता है।[25] यज्ञकर्त्ता भक्तों का देवाह्वान सफल हुआ।[26] हे ईश! तुम सूर्य की तरह मुझ प्रार्थी को संसार से पार लगाओ[27] तथा जो आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका हुआ है।

हे पूषन्! मुझ सत्यधर्मी को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए उसे उघाड़ दे।[28] मुण्डकोपनिषत् में कहा गया है कि – प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और उसका लक्ष्य कहा जाता है उसका सावधानीपूर्वक भेदन करना चाहिए और बाण के समान तन्मय हो जाना चाहिए।[29] श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में इस प्रकार कहा है –

कर्मब्रह्मोद्‌भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्‌भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥
अन्नाद्‌भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्‌भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्‌भवः॥[30]

–अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कॉलेज, अमृतसर।

---

19. मुण्डकोपनिषद्– 2.1.6.
20. ऋग्वेद 1.15.9.
21. ऋग्वेद – 1. 164. 50.
22. ऋग्वेद – 1. 140.4.
23. ऋग्वेद– 1. 107. 1 – यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नम्।
24. ऋग्वेद– 1.13.5 – यत्रामृतस्य चक्षणम्।
25. ऋग्वेद– 3. 10. 3 – सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति।
26. ऋग्वेद – 6. 65. 5 – सत्या नृणामभवद् देवहूतिः।
27. ऋग्वेद – 10.29.5 – प्रेरय सूरो अर्थं न पारम्।
28. यजुर्वेद – 10.15.
29. मुण्डकोपनिषद् – 2.2.4.
30. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, 3. 15–14.

www.thearyasamaj.org

गीता में स्थित-प्रज्ञ के लक्षण

–श्री बलराज

श्रीमद्भगवद्गीता में उल्लिखित प्रत्येक विषय मानव जीवन में एक विशेष स्थान रखते हैं। स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताने से पूर्व हमें गीता के बारे में जानना चाहिए।

भारतीय साहित्य में दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं जिनको आकरग्रन्थ भी कहा जाता है। उनमें से एक रामायण है तथा दूसरा महाभारत। हम यहाँ पर महाभारत के विषय में चर्चा करेंगे क्योंकि गीता महाभारत से ही उद्धृत है। महाभारत 18 पर्वों में विभाजित एक विस्तृत ग्रन्थ है, जिसमें एक लाख श्लोक हैं। इसी ग्रन्थ के भीष्मपर्व के तीसरे उपपर्व से श्रीमद्भगवद्गीता को लिया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ अठारह अध्यायों में विभाजित है जिनमें 700 श्लोकों का प्रयोग हुआ है। गीता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें निहित विषयों के ज्ञान से हमें आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दुःखों से शान्ति मिलती है। यह ग्रन्थ हमें जीवन की क्षणभंगुरता, जीवन दर्शन, कर्म का महत्त्व, आत्मा का स्वरूप तथा अनेक ऐसे विषय जिनके बारे में जीव अनभिज्ञ रहता है, इनसे परिचित करवाता है। इन अनभिज्ञ विषयों पर प्रकाश डालने का कार्य यदि कोई ग्रन्थ करता है तो वह गीता ही है।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण –

गीता के द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण से अर्जुन पूछते हैं कि हे केशव! आप ने मुझे बताया है कि जब तेरी बुद्धि स्थिर या अचल हो जायेगी तभी तू आत्मज्ञानरूप तत्व को समझेगा। अतः हे जनार्दन! आप मुझे बताइये कि समाधि में स्थित स्थिरबुद्धि वाले पुरुष की क्या परिभाषा है? वह स्थितप्रज्ञ पुरुष कैसे बोलता है? कैसे बैठता है? कैसे चलता है ?[1] तब श्रीकृष्ण अर्जुन के इन प्रश्नों को सुनकर उसे स्थितप्रज्ञ पुरुष के विषय में बताते हुए कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने अपनी सारी इच्छाओं का त्याग कर दिया है तथा अपने आप में ही जो हमेशा सन्तुष्ट रहता है वह व्यक्ति स्थिरप्रज्ञ है। उस व्यक्ति पर किसी भी प्रकार की इच्छा की आसक्ति का प्रभाव नहीं रहता।[2]

द्वितीयाध्याय में ही कहा गया है कि जो मनुष्य दुःखों से व्याकुल नहीं होता, सुखों की प्राप्ति पर ज्यादा खुश नहीं होता, आसक्ति से रहित, भय तथा क्रोध जिस पर अपना प्रभाव नहीं दिखाते हैं, वही स्थितप्रज्ञ है।[3] जो मनुष्य इस

1. स्थित प्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥
– मद्भगवद्गीता,अध्याय-2, श्लोक-54

2. गीता-2, 55.

3. गीता-2, 56.

www.thearyasamaj.org

संसार में हर-स्थान पर प्रेमपूर्वक रहता है, जो न अच्छे परिणाम को पाकर अधिक प्रसन्न होता है तथा न बुरे परिणाम को पाकर दु:खी होता है, जो किसी से किसी भी प्रकार का द्वेष नहीं रखता सबके साथ मित्रवत् व्यवहार करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।[4]

गीता में कहा गया है कि विभिन्न विषयों में लगे लोगों को फल की प्राप्ति तो हो जाती है, परन्तु उनकी आसक्ति कभी भी नहीं मिटती, परन्तु जिस स्थिरबुद्धि का परमात्मा से एकीभाव हो जाता है उसकी आसक्ति भी शान्त हो जाती है।[5] द्वितीय अध्याय में ही एक लौकिक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार एक कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही स्थिरप्रज्ञ पुरुष अपनी समस्त इन्द्रियों को विषयों से समेट लेता है, अर्थात् चिन्तनशील पुरुष अपनी नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा व त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर स्थिरप्रज्ञ हो जाता है।[6]

गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह राग व द्वेष से रहित तथा अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा सभी विषयों का सेवन उपेक्षाभाव से करता है। उसकी अन्त:स्थिति स्वच्छ हो जाती है, वह शान्ति को प्राप्त करता है।[7] गीता में ही कहा गया है कि जो व्यक्ति भौतिक सुखों में पूर्ण रूप से डूबे रहते हैं उनके लिए जो अज्ञान या रात्रि होती है, वही संयमी पुरुषों के लिए दिन होता है, अर्थात् सामान्य व्यक्ति जब शयन करते हैं, उसी समय स्थितप्रज्ञ व्यक्ति जागरण करते हैं। वे हमेशा भावों के प्रति उदासीन रहते हैं।[8] श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! जिस प्रकार से अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में बहुत से जल प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार जिस पुरुष विशेष में सारे भोग समा जाते हैं वो पुरुष शान्ति को प्राप्त करेगा और स्थिरबुद्धि वाला होगा, अर्थात् जिस प्रकार एक समुद्र में बहुत जल प्रवेश करने पर भी समुद्र में कोई परिवर्तन नहीं होता, उसी प्रकार जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि भोगों के माध्यम से प्रभावित नहीं होते वह संयमी पुरुष है।[9]

गीता के द्वितीय अध्याय में बताया है कि जो प्राणी अपनी इन्द्रियों को वश में करके स्थिर चित हो जाता है, वह ईश्वर को प्राप्त कर लेता है और जिस पुरुष के वश में इन्द्रियाँ होती हैं उस पुरुष की बुद्धि स्थिर होती है।[10] द्वितीय अध्याय में ही स्थितप्रज्ञ की परिभाषा बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं अन्त:करण की प्रसन्नता होने पर प्राणी के सम्पूर्ण दु:खों का अभाव हो जाता है और उस

4. गीता-2, 57.
5. गीता-2, 59.
6. गीता-2, 58.
7. गीता-2, 64.
8. गीता-2, 69.
9. गीता-2, 70.
10. गीता-2, 61.

www.thearyasamaj.org

प्रसन्नचित्त कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हट कर एक परमात्मा में ही भली–भाँति स्थिर हो जाती है। हे अर्जुन! जिसका अन्तःकरण बिल्कुल निर्मल हो जाता है, उसके जीवन के सारे दुःख स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।[11] द्वितीय अध्याय में ही श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस प्रकार वायु समुद्र में जहाज को जिस ओर ले जाने में समर्थ होता है, उसी प्रकार मन भी इन्द्रियों के साथ मिलकर बुद्धि का हरण कर लेता है, इसीलिए हे अर्जुन जिस पुरुष की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है।[12]

द्वितीय अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि स्थितप्रज्ञ पुरुषों की स्थिति ब्राह्मी–स्थिति कहलाती है, इसको प्राप्त करके योगी कभी भी मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इस ब्राह्मी–स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।[13]

जिस व्यक्ति ने भौतिक संसार से अपने आपको अलग कर लिया है, जिस पर न किसी मोह का प्रभाव पड़ता है न किसी भाव का। क्रोध करने वाली स्थिति या अवस्था में जो क्रोध नहीं करता तथा स्नेह या प्यार करने की अवस्था में जो प्राणी इससे दूर रहता है, वही स्थितप्रज्ञ है। जीवन में जब दुःख का समय होता है उस समय जो व्यक्ति दुःखी नहीं होता अर्थात् उस पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तथा सुख की अवस्था आने पर वह उसका दिखावा नहीं करता वही स्थिरबुद्धि प्राणी है। व्यक्ति की जब समस्त कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ वह जो चाहे वो करती हैं तथा जो नहीं चाहता उसमें वे किसी भी रूप में लिप्त नहीं होतीं वह स्थिति ही स्थिरप्रज्ञ की है।

आज के इस भौतिकवादी व भाग–दौड़ भरे जीवन में श्रीमद्भगवद्गीता का एक विशेष महत्त्व है, क्योंकि गीता में उद्धृत प्रत्येक विषय भौतिक जीवन में आने वाली समस्याओं के लिए राम–बाण का काम करते हैं, यदि भौतिकवादी जन इसमें अपनी आशावादिता प्रकट करें। उपर्युक्त विषय में यही सब बताया है कि एक प्राणी के पास सब कुछ हो सकता है, परन्तु शान्ति नहीं। पर श्रीमद्भगवद्गीता में इसका निदान बताया गया है कि मनुष्य अपनी स्थिति को स्थिर प्रज्ञा वाली बना ले।

अतः अन्त में हम कह सकते हैं कि गीता में लिखित प्रत्येक विषय का मानव जीवन में एक विशेष स्थान है, परन्तु स्थितप्रज्ञ होना एक विशिष्ट कार्य है। निष्कर्षतः स्थितप्रज्ञ वही प्राणी विशेष है जिसने अपनी इन्द्रियों के भावों को अपने वश में कर लिया है।

– सहायक-प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, दयानन्द महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

---

11. गीता–2, 65.
12. गीता–2, 68.
13. एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥
–गीता–2, 72.

www.thearyasamaj.org

वारकरी संप्रदाय

–प्रा. एस. डी. गाजरे

हिन्दू धर्म में भारत में जो अनेक भक्तिसंप्रदाय हैं, उनमें वारकरी–संप्रदाय एक प्रमुख है। इस संप्रदाय के प्रमुख देवता पंढरपुर के श्री विठ्ठल हैं। भारत में विठ्ठल के बहुत सारे अनुयायी हैं। उनमें से ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदी उच्च कोटि के श्रेष्ठ संत हैं। उन्होंने अपने वाङ्मय से वारकरी–संप्रदाय को विश्व स्तर पर पहुँचाने का काम किया। यह वाङ्मय महाराष्ट्र का अमूल्य धन माना जाता है।[1] युनेस्को ने ज्ञानेश्वर की 'ज्ञानेश्वरी' और तुकाराम की 'तुकाराम गाथा' यह दोनों ग्रंथ विश्वस्तर पर पहुँचाने के लिए उनका अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस वारकरी–संप्रदाय का उद्‌गम महाराष्ट्र में हुआ और वह अभी तक उसी तरह आज भी चल रहा है। इस संप्रदाय से लोगों को सद्धर्म और सदाचार जैसे श्रेष्ठ जीवनमूल्यों की शिक्षा मिलती है।[2]

'वारकरी' शब्द का अर्थ –

'वारी करने वाला वारकरी' परंतु वारी का मतलब क्या? कै. राजवाड़े ने वारी शब्द का अर्थ प्रवासियों की टोली=वारी ऐसा दिया है। जो प्रवासी पंढरपुर के विठोबा के दर्शन के लिए जाते हैं, उसका नाम–जप करते हैं, उसे वारकरी कहा है। अमरकोश में 'वार' शब्द का मतलब 'समुदाय' दिया है।

प्रतिवर्ष प्रत्येक महीने में नियमित से पवित्र स्थल की यात्रा करने का प्रचलित अर्थ वारी शब्द का है। वारकरी की दृष्टि से पांडुरंग देवता का निवास–स्थान पंढरपुर यह पवित्र स्थल है और असाढी, कार्तिक, चैत्र और माघ एकादशी को पंढरपुर में जाकर विठ्ठल का दर्शन करना, गले में तुलसी की माला डालकर उपासना करना, उसे वारकरी कहते हैं। उपासना करने का जो मार्ग है उसे वारकरी–पंथ कहा जाता है।[3]

ज्ञानेश्वर जी ने वारकरी का वर्णन बड़ी रसिकता से किया है–

कुंचे पताका झळकती। टाळ मृदंग वाजती।
आनंदे प्रेम गर्जती। भद्रजाती विठ्ठलाचे॥[4]

'वारकरी संप्रदाय' को 'भागवतधर्म' कहते हैं। यह धर्म अथवा संप्रदाय संत ज्ञानेश्वर के पूर्वकाल में भी अस्तित्व में था। ज्ञानेश्वर जी ने वारकरी–संप्रदाय के माध्यम से लोगों में सुसंगत

1. भालचंद्र पंढरीनाथ बहिरट, वारकरी संप्रदाय: उदय व विकास व्हीनस प्रकाशन पुणे पृ. क्र. 1.
2. कित्ता पृ. 2.
3. ह. भ. प. शं. वा. दांडेकर – वारकरी संप्रदाय का इतिहास, पृ. 2.
4. सकल– संत गाथा (सं. राहिरकर, बहिरट व कंपनी), तृतीय आ. पृ. क्र. 43.

www.thearyasamaj.org

व तर्कशुद्ध तत्वज्ञान, सूक्ष्म नीतिमीमांसा, धार्मिक जीवन का मूल्यांकन और लोकजागृति की। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज के सब स्तर के लोग इस भक्तिमार्ग के अनुयायी बने। इसलिए संत ज्ञानदेव जी को इस धर्म का मूल मानते हैं, और संत नामदेव, संत एकनाथ और संत तुकाराम जैसे श्रेष्ठ संतों ने इस संप्रदाय को सामान्यजन तक पहुँचाने का काम किया।[5]

देवता–

इस संप्रदाय में सबसे महत्त्वपूर्ण देवता श्री विठ्ठल ही है। उनकें स्वरूप पर आचारधर्म आधारित है। यह विठ्ठल विष्णु का ही रूप है। वारकरी विठ्ठल को भगवान् श्रीकृष्ण का बालरूप मानते हैं। तुकारामजी ने अपने अभंग में भक्त की दृष्टि से हरि (विष्णु) और हर शिव इनमें कोई भेद नहीं है, ऐसा स्पष्ट किया है। समाज में अनेक देवदेवता, उनके तंत्रमत्र, आचार उपासना प्रचलित थे। इसलिए समाज में एकता निर्माण करने के उद्देश्य से सभी संतों ने श्रीविठ्ठलस्वरूपी प्रेमदेवता को स्वीकार किया। तुकोबाजी ने विठ्ठल मूर्ति को निर्गुण चैतन्य का सगुण स्वरूप बताया है और उससे भक्तों को प्रेमसुख मिलता है।

आचार –

वारकरी-संप्रदाय के अनुयायी रोज श्रीविठ्ठल की पूजापाठ करते हैं। गले में तुलसी की माला पहनते हैं। कपालपर गोपीचंदन का टीका लगा कर उसमें काले रंग का आभीर लगाते हैं। एक साल में किमान दो बार पंढरपुर की वारी करते हैं।

इस संप्रदाय का एक मंत्र है 'जय जय रामकृष्ण हरी' यह मंत्र तुकोबाजी ने लोगों तक पहुँचाया। यह मंत्र संत ज्ञानदेव, संत एकनाथ, संत नामदेव इनके काव्यों में भी है। वारकरी आध्यात्मिक चर्चा करते हैं, कीर्तन करते हैं। कीर्तन का मतलब टाल, वीणा, मृदंग बजाकर अभंग का गायन करना।

इस संप्रदाय में भजन गाना प्रमुख काम है। भजन गाकर, वीणा, टाल, मृदंग के साथ लीन हो जाते हैं और मनुष्य जीवन के सभी दुःख भूल जाते हैं। तुकारामजी कहते हैं–

सुंदर ते ध्यान उभे विटेवरी।
कर कटावरी ठेवोनिया॥ और
रूप पाहता लोचणी।
सुख झाले हो साजणी॥

तुकाराम 'भक्ति' को श्रेष्ठ मानते हैं। मनुष्य तन-मन-धन से भगवंत की सेवा करता है। वह मनुष्य कौन-सी भी जाति का हो, भक्ति, भक्ति ही होती है। इस वारकरी-संप्रदाय में अनेक जाति के लोग श्रेष्ठ भक्त रहे हैं जैसे गोरा कुंभार, कबीर, कान्होपात्रा एक गणिका, चोखामेळा (अछूत जाति का), जनबाई सेविका इन्होंने भक्तिमार्ग से परमेश्वर की मर्जी संपादन की।[6]

---

5. अ. रा. कुलकर्णी, महाराष्ट्र समाज आणि संस्कृती, डायमंड पब्लिकेशन्स, पुणे।
6. दांडेकर शं. वा. वारकरी पंथाचा इतिहास (ज्ञानकोटा, सं. केतकर श्री. व्य.)।

www.thearyasamaj.org

तेरह से अठारह सदी तक संत ज्ञानदेव, नामदेव, संत एकनाथ और संत तुकाराम जी ने जो कार्य किया उससे भक्ति-संप्रदाय विकसित हुआ। भक्तिमार्ग एक संघटित स्वरूप प्राप्त कर महाराष्ट्र में प्रचलित हुआ। इसमें सभी जाति, धर्म का जनसमुदाय शामिल हुआ।[7]

प्रमुख स्थल –

पंढरपुर वारकरी-संप्रदाय का प्रमुख क्षेत्र महाराष्ट्र के सोलापुर जिले में भीमा नदी के पश्चिम तीर पर स्थित है। भीमा नदी को 'चंद्रभागा' भी कहते हैं क्योंकि उसका आकार चंद्र की तरह लगता है। वारकरियों के लिए पंढरपुर की तरह आलंदी, पैठण, देहू, अरण, मंगलवेढा, नेवासे आदि स्थानों की भी वारकरी वारी करते हैं।[8]

सुख पंढरीसी आले।
पुंडलीके सांठविले॥ – संत तुकाराम

इस संप्रदाय के सामाजिक अधिष्ठान का विवेचन करते समय डॉ. श. तुकपुळे कहते हैं कि संतों के काव्य से जातीय भेदभाव मिटता है। इसलिए यह भक्तिमार्ग शूद्र वर्ग को भी शामिल करता है। परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को अबाधित रखकर प्राप्त परिस्थिति में समाज को मानवधर्म सिखाया। निराधार आचार-विचारों का एवं आडम्बर का विरोध किया तथा सद्गुणों का आदर्श सिखाया।

संत नामदेव –

संत नामदेव जी का जन्म 26 अक्तूबर, 1270 में पंढरपुर में हुआ। उनके पिता के प्रभाव के कारण वे भी विठ्ठल के भक्त बने। संत नामदेव और संत ज्ञानदेव आलंदी में मिले। ज्ञानदेव जी के कहने पर नामदेव विठोबा खेचर से मिले और वही उनके गुरु बन गए। नामदेव 20 वर्ष पंजाब में रहे, संत ज्ञानदेव जी ने जो भक्तिमार्ग उनको बताया उसका प्रचार करते रहे। सिखों को पवित्र ग्रंथ 'गुरु ग्रंथसाहिब' में उनके 61 अभंग संग्रहीत हैं। उनके अभंग 'संत नामदेव जी की गुरुवाणी' नाम से हैं। संत नामदेव वारकरी-संप्रदाय के प्रमुख आधारस्तंभ के रूप में माने जाते हैं। उन्होंने अपने भजन-कीर्तन में वारकरी-संप्रदाय और विठ्ठल-भक्ति की पताका उत्तर-भारत में लहराने का काम किया। इस महान् संत ने अषाढ वध 13 शके 1272 में पंढरपुर में समाधि ली।

संत ज्ञानेश्वर (1275–1296) –

पैठण के पास आपेगाव में विठ्ठलपंत कुलकर्णी के दूसरे पुत्र ज्ञानेश्वर का जन्म श्रावण वध 8 शके 1997 (सन् 1275) में हुआ। ज्ञानदेव जी को निवृत्तीनाथ (1273-1298) और सोपानदेव (1278-1296) ये दो भाई और मुक्ताबाई (1279-1297) नामक बहन थी। ज्ञानदेव जी ने 'भावार्थदीपिका' नामक ग्रंथ लिखा जो 'ज्ञानेश्वरी' के नाम से प्रचलित है। उन्होंने उसमें आत्मज्ञान के लिए चार मार्ग बताए हैं–

7. तुळपुळे शं. गो. पाच संत कवी, पुणे 1962.

8. प्रा. द. रा. बेन्द्रे – विठ्ठल संप्रदाय।

www.thearyasamaj.org

(1) ज्ञानयोग, (2) ध्यानयोग, (3) कर्म-योग, (4) भक्तियोग, इससे यह प्रतीत होता है कि गुरु पर विश्वास रखना और संसार के दुःख नष्ट करना। ज्ञानदेव जी ने भक्तिसंप्रदाय की नींव रखी। परमेश्वर की प्राप्ति के लिए भक्ति-ऐसा वे कहते हैं।

संत एकनाथ (1533-1599) –

संत नामदेव और ज्ञानदेव जी के 200 साल बाद संत एकनाथ जी का समय आता है। उनके गुरु जनार्दन स्वामी सर्वधर्मसमभाव मानते थे। संत एकनाथ जी ने लोगों को संसार प्रपंच में रहकर परमार्थ करने का उपदेश दिया। उनकी दृष्टि मानवतावादी थी। 1599 में उन्होंने पैठण में समाधि ली।

एकनाथ जी के मत से श्रेष्ठ भक्त वह है, जिसको सभी सृष्टि में भगवान् दिखता है। इस विश्व को ईश्वर ने ही बनाया है। यह जो जानता है उसे सर्वश्रेष्ठ भक्त कहते हैं। वह भक्त ईश्वर का सतत जाप करता है। अहंकार अज्ञान से मुक्त रहता है।

संत तुकाराम (1608-1650) –

तुकाराम महाराज का जन्म पुणे जिले के देहू गांव में हुआ। संत तुकाराम जी ने भी ईश्वर प्राप्ति का मार्ग ईश्वर के नामस्मरण से होता है, ऐसा कहा है। एक जगह पर ध्यानस्थ बैठकर विठ्ठल का नाम बार-बार लेने से सुख प्राप्त होता है। तुकाराम महाराज भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। तन-मन-धन से ईश्वर की सेवा करने पर ईश्वर का ज्ञान प्राप्त होता है।[9]

इसी तरह गोरा कुंभार, सावता माली, नरहरी सोनार, विसोबा खेचर, जनाबाई, सेना न्हावी, कान्होपात्रा, बहिणाबाई आदि वारकरी-संप्रदाय के श्रेष्ठ अनुयायी रहे हैं। उन्होंने अपने वाङ्मय से वारकरी-संप्रदाय को जनलोक तक पहुँचाया। इस संप्रदाय में जाति-धर्म इत्यादि से भेदभाव नहीं है। सर्वधर्म समभाव में सभी वारकरी मिलजुल कर वारी करते रहते हैं।

वारकरी-पंथ मानवीय जीवन में परमेश्वर प्रेम की अनुभूति देकर जीवन समृद्ध और संपन्न करने के लिए मार्ग बताता है।

– दयानन्द कॉलेज, सोलापुर (महाराष्ट्र)

9. डॉ. सतीश कपूर जी – वारकरीज्।

www.thearyasamaj.org

गीता का निष्काम कर्मयोग

–डॉ. राजेश्वर मिश्र

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
(2.47)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥
(3.19)

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः॥
(4.20)

गीता के उपर्युक्त श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को स्पष्टतः निष्काम-कर्म की ओर संकेत किया है। इन श्लोकों पर ध्यान देने से यहाँ सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि उन्होंने अर्जुन को निष्काम कर्म का उपदेश क्यों किया? वस्तुतः इसकी आवश्यकता क्यों हुई? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें गीता के प्रथम अध्याय के कुछ श्लोकों (26.47) में वर्णित उस परिदृश्य को ध्यान में लाना होगा जिसके कारण अर्जुन शोकाकुल होते हुए तथा युद्ध के परिणाम की चिन्ता करते हुए विषादग्रस्त हो गये थे। जैसा कि गीता के इन श्लोकों एवं महाभारत में गीता से पूर्व के कुछ अध्यायों में वर्णित वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि युद्ध के मैदान में खड़े हुए सगे-सम्बन्धियों एवम् अपने स्वजन-बन्धुओं को देखकर अर्जुन करुणा से अभिभूत हो गये और शोक के कारण उनका मन भ्रमित हो गया था। वे अपने स्वजनों की हत्या, कुल का विनाश, तत्फलस्वरूप कुल की स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकरता एवम् उससे सनातन कुलधर्म और जाति-धर्म के विनाश आदि युद्ध के भीषण परणािमों की चिन्ता के कारण अपनी विकृत मानसिक अवस्था का परिचय देते हुए मोह के कारण युद्ध से विरत हो गये और काँपते हुए अपना गाण्डीव धनुष छोड़कर शोक से उद्विग्न मन से रथ के पिछले भाग में बैठ गये थे। असमय में मोह से ग्रस्त ऐसे अर्जुन को अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए मनसा तैयार करने हेतु भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश किया था। क्षत्रिय वीर होने के कारण अर्जुन को क्षात्र-धर्म का पालन करने के लिए ही उन्होंने उनसे यह कहा था कि –

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥
(2.3)

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥
(2.31)

इन श्लोकों के माध्यम से उन्होंने अर्जुन को कायरता एवं मन की दुर्बलता का परित्याग करके अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्य कर्म का पालन करने के लिए उत्प्रेरित किया था, क्योंकि क्षत्रिय का

www.thearyasamaj.org

धर्मयुद्ध से श्रेष्ठ और कोई अन्य कल्याणकारी कर्त्तव्य नहीं होता। वस्तुतः निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए ही गीता का उपदेश है, जो कर्मफल, आसक्ति, चिन्ता आदि से मुक्त होकर निष्काम भावना के धरातल पर किया जाता है तथा उसे ईश्वरेच्छा मानकर उसका निमित्त बन कर कर्म किया जाता है।

इस प्रकार गीता के आरम्भिक श्लोकों से यह सर्वथा स्पष्ट है कि युद्ध-रूप कर्म के परिणामों की चिन्ता न करने तथा अपने कर्त्तव्य का निष्काम भाव से पालन करने के लिए ही भगवान् श्रीकृष्ण ने न केवल अर्जुन को प्रत्युत समग्र मानव-जाति को गीता के माध्यम से ज्ञानयोग एवं कर्मयोग का उपदेश किया है तथा आत्मा की अमरता, नित्यता आदि का संकेत करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण मानव को जीवन के यथार्थ का बोध कराया –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥
(2.27)

इस यथार्थ ज्ञान के पश्चात् जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि को समान समझने का उपदेश करती हुई गीता मनुष्य को शोक से रहित होकर केवल कर्त्तव्य-कर्म करने की प्रेरणा देती है (2.38)। वस्तुतः अर्जुन को माध्यम बनाकर सभी मनुष्यों के कल्याण के लिए तथा उनका भ्रम दूर करने के लिए उन्होंने गीता में यह उपदेश किया कि माया से उत्पन्न सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरतते हैं, ऐसा समझकर तथा मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाली क्रियाओं में कर्तापन के अभिमान को त्याग कर जब जीव (मनुष्य) सर्वव्यापी सच्चिदानन्द परमात्मा में एकीभाव से स्थित हो जाता है, तब वह ज्ञानयोग की अवस्था कही जाती है, परन्तु जब फल और आसक्ति को त्याग कर भगवदाज्ञानुसार जीव (मनुष्य) निष्काम होकर केवल समत्वबुद्धि से भगवान् के लिए कर्म करता है, तब उस अवस्था का नाम निष्काम कर्मयोग है। गीता में इसी को समत्वयोग (2.48), बुद्धियोग (10.10), कर्मयोग (13. 24), तदर्थकर्म (3.9), मदर्थकर्म (12.10), मत्कर्म (11.55, 12.10) आदि नामों से कहा गया है।

गीता में बताये गये निष्काम-कर्मयोग को समझने के लिए सर्वप्रथम 'निष्काम', 'कर्म' और 'योग' इन तीनों के अर्थ को समझना आवश्यक है। यहाँ 'निष्काम' का अर्थ है–कामना से रहित, इच्छा से रहित अर्थात् मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं का सर्वथा त्याग, जिसे गीता इन शब्दों में व्यक्त करती है–

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
(2.55)

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥
(2.71)

यहां 'कर्म' का तात्पर्य है– 'शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्म', जिसे गीता स्वभावजकर्म, स्वकर्म, सहजकर्म आदि शब्दों द्वारा (द्रष्टव्य 18.42-48 श्लोक) संकेत करती है। परन्तु गीता में आये हुए

www.thearyasamaj.org

'योग' शब्द के तीन अर्थ होते हैं– 'युजिर् (योगे) धातु से इस शब्द का अर्थ है– समरूप परमात्मा के साथ नित्यसम्बन्ध', जैसा कि स्वयं गीता कहती है– "**समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि**" (2.53); युज् (समाधौ) धातु से निष्पन्न होने पर इस शब्द का अर्थ है–'चित्त की स्थिरता' अर्थात् समाधि में स्थिति, यथा गीता संकेत करती है– "**यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया**" (6.20); और युज् (संयमने) धातु से बने योग शब्द का तात्पर्य है – सामर्थ्य, प्रभाव यथा गीता में संकेतित है– "**पश्य मे योगमैश्वरम्**" (9.5)।

पातञ्जल-योगदर्शन में चित्तवृत्ति के निरोध को 'योग' कहा गया है– "**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**" (1.12) जिसका परिणाम है– 'द्रष्टा का स्वरूप में स्थित हो जाना' (**तदा द्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम्.....** (1.3-4)। इस प्रकार पातञ्जलयोगदर्शन में योग का जो परिणाम है वही गीता का योग है। अतः चित्तवृत्ति से सर्वथा सम्बन्ध विच्छेदपूर्वक स्वतःसिद्ध, समस्वरूप में स्वाभाविक स्थिति को ही गीता में योग कहा गया है, अर्थात् दुःखों के साथ संयोग का वियोग हो जाना योग है, यथा गीता कहती है– "**तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्**" (6. 23)। दूसरे शब्दों में योग का तात्पर्य है– उपाय (साधन), जिसके द्वारा समबुद्धियुक्त मनुष्य पुण्य-पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है, क्योंकि समत्वरूप योग की कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धन से मुक्त होने का उपाय है, यथा गीता में कहा गया है –

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥
(2. 50)

अतएव कर्म का उपाय (साधन) ही निष्काम कर्मयोग है अर्थात् जब कर्म निष्काम भाव से जगत् के यथार्थ ज्ञान का उपाय बनकर शक्ति अथवा मोक्ष प्राप्ति का साधन बनता है, तब उसे कर्मयोग अथवा निष्काम कर्मयोग कहा जाता है। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार समझा जा सकता है कि 'योग' समता की अवस्था का नाम है अर्थात् कर्त्तव्य कर्म करते हुए अन्तःकरण (मन) को निर्विकार (निर्दोष) रखते हुए आसक्ति को छोड़कर सिद्धि और असिद्धि में, लाभ और हानि में समान मन वाला होना ही कर्मयोग की समता है, जैसा कि गीता कहती है–

योगस्थःकुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥
(2.48)

श्रीमद्भागवतपुराण के एकादश स्कन्ध में भी उद्धव को उपदेश करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने योग को उपाय (साधन) बताया है। इसी योग की प्राप्ति के लिए गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि साधनों का वर्णन है, परन्तु इन साधनों को योग तभी कहा जाता है, जब असत् से सम्बन्ध-विच्छेद (अलगाव) और परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध का अनुभव होगा। इस प्रकार असत्य (झूठ) से सम्बन्ध-विच्छेद (पार्थक्य) करना ही निष्काम-कर्मयोग है।

गीता के तृतीय अध्याय में निष्कामता की ओर संकेत करते हुए यह कहा गया है कि संसार

www.thearyasamaj.org

में कर्म का आरम्भ किये बिना मनुष्य निष्कर्मता अर्थात् योगनिष्ठा (कर्मयोग) को प्राप्त नहीं कर सकता और कर्मों के केवल त्यागमात्र से सिद्धि अर्थात् सांख्यनिष्ठा (ज्ञानयोग) को नहीं प्राप्त कर सकता (3.4), क्योंकि कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है। वह निःसन्देह किसी भी क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकता, प्रत्युत प्रकृतिजन्य गुणों द्वारा बाध्य होकर कर्म करने के लिए बाध्य होता है (3.5)। अतः गीता के अनुसार वही व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है, जो मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से समग्र इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, यथा–

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥
(3.7)

इसीलिए गीता यह उपदेश करती है कि शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्म ही करना चाहिए, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर है तथा शरीर-निर्वाह या जीवन-यात्रा भी कर्म के बिना सम्भव ही नहीं है; अतः कर्म करना तो अनिवार्य है, तद्यथा –

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥
(3.8)

परन्तु गीता के अनुसार आसक्ति से रहित होकर ही कर्म करना चाहिए क्योंकि निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदैव निःस्वार्थ भाव से अपने कर्त्तव्य कर्म का भलीभाँति पालन करने वाला मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करता है, यथा तृतीय अध्याय में कहा गया है–

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥
(3.19)

इस बात की पुष्टि हेतु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आसक्ति रहित कर्म द्वारा परमसिद्धि प्राप्त करने वाले जनकादि ज्ञानीजनों को उद्धृत करते हैं (3.20)। अतः गीता का यह उपदेश है कि अन्तर्यामी परमात्मा में दत्तचित्त होकर सम्पूर्ण कर्मों को उस परमात्मा में अर्पित करते हुए अर्थात् स्वयं को उसका कर्ता न मानते हुए आशा, ममता और सन्ताप रहित होकर मनुष्य को अपना कर्म करना चाहिए (3.30), क्योंकि गुणरहित भी अपना कर्म अत्युत्तम माना गया है तथा उसे करते हुए मृत्यु को प्राप्त करना भी कल्याणकारक बताया गया है–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥
(3. 35)

इसीलिए गीता कर्मयोग (निष्कामकर्म-योग) को ज्ञानयोग से श्रेष्ठ मानती है, यथा – **''तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते''** (5.2)। यहाँ अवधेय तथ्य यह है कि कर्मयोग में सम्पूर्ण कर्म कर्त्तव्य-परायण होकर परम्परा सुरक्षित रखने के लिए अर्थात् दूसरों के लिए किए जाते हैं; अतः अपने सुख-सुविधा, आदर-सम्मान, विद्या-बुद्धि का अभिमान, भोग और संग्रह की इच्छा आदि का त्याग सुगमता से हो जाता है, जबकि ज्ञानयोग में विवेकपूर्ण विचार के द्वारा अपने सुख-आराम आदि का त्याग करने में कठिनाई होती है। इस प्रकार निष्काम कर्म करने

www.thearyasamaj.org

वाले कर्मयोगी मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति भी सरलतया हो जाती है, क्योंकि वह कामना, स्पृहा, ममता, अहंता से रहित होकर कर्म करता है और ऐसे कर्मयोगी को ही शान्ति प्राप्त होती है (2.71; 5.12), क्योंकि एक तो उसका संसार से बन्धन नहीं रहता, दूसरे वह ममत्व बुद्धि से रहित होकर केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति अर्थात् फलासक्ति को त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करता है, यथा गीता में उपदिष्ट है –

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥

(5.11)

इस प्रकार वह भगवत्प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त करता है, परन्तु सकाम पुरुष कामनाओं की प्रेरणा से कर्मफल में आसक्त होकर बँधता है– **'अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते'** (5.12)। गीता ऐसे मनुष्य अर्थात् कर्मफल का आश्रय न लेकर कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करने वाले को ही संन्यासी तथा योगी मानती है (6.1)। फलासक्त व्यक्ति को नहीं। अतः निष्कामभाव से किया गया कर्म ही कर्मयोग है।

इस प्रकार कर्मयोगी व्यक्ति समस्त विहित कर्मों में तथा उनसे प्राप्त होने वाले फल में आसक्ति न रखते हुए संसार में प्राप्त भोगों तथा परलोक में प्राप्त होने वाले भोगों में राग-द्वेष आदि को त्याग कर परमात्मा में नित्य तृप्त रहता है, वह सांसारिक कर्म, यथा– यज्ञ, दान, तप, अध्ययन-अध्यापन, प्रजापालन, लेन-देन रूप व्यापार, सेवा, खाना-पीना, सोना-जागना, चलना-फिरना, उठना-बैठना आदि समस्त कार्य करता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता, जैसा कि गीता कहती है–

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः॥

(4.20)

क्योंकि निष्काम पुरुष बिना इच्छा के अपने-आप प्राप्त होने वाले पदार्थ में सदा सन्तुष्ट रहता है, उसमें ईर्ष्या का सर्वथा अभाव हो जाता है तथा हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों से सर्वथा रहित होकर सिद्धि या असिद्धि में सदैव समान भाव रखता है; अतः ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे बँधता नहीं है, प्रत्युत कर्मफल में आसक्ति न होने, देहाभिमान और ममता से सर्वथा रहित होने तथा परमात्मा में निरन्तर चित्त लगे रहने के कारण निःस्वार्थ भाव से लोक कल्याण के लिए कार्य करने वाले मनुष्य के निखिल कर्म भलीभाँति नष्ट हो जाते हैं, यथा–

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥

(4.22)

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥

(4.23)

वस्तुतः ऐसे कर्मयोगी के सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना किसी कामना और संकल्प के होते हैं तथा कर्म और अकर्म को विवेकपूर्वक यथार्थ रूप में जान कर कर्म करने के

www.thearyasamaj.org

कारण ज्ञानरूप अग्नि से उसके समस्त कर्म जल जाते हैं अर्थात् उन कंर्मों में कर्ता को बाँधने की शक्ति नष्ट हो जाती है, जैसा कि गीता कहती है–

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥
(4.19)

अतः निष्काम भावना से किये गये शास्त्रोचित कर्म में प्रवृत्ति ही निष्काम–कर्मयोग है।

इस योगनिष्ठा अथवा कर्मयोग के तीन भेद माने गये हैं–(1) कर्मप्रधान कर्मयोग, (2) भक्ति मिश्रित कर्मयोग और (3) भक्तिप्रधान कर्मयोग। समस्त कर्मों में और सांसारिक पदार्थों में फल और आसक्ति का सर्वथा त्याग करके अपने वर्णानुसार शास्त्रविहित कर्म करते रहना ही कर्मप्रधान कर्मयोग है। कर्मयोग का साधन वास्तव में तभी पूर्ण होता है, जब कर्मफल और उसमें आसक्ति दोनों का ही त्याग किया जाता है। सम्पूर्ण जगत् में ईश्वर को व्याप्त समझते हुए अपने–अपने वर्णोचित कर्म के द्वारा परमेश्वर की पूजा करना ही भक्तिमिश्रित कर्मयोग है, यथा गीता के अठारहवें अध्याय में संकेत किया गया है– ''**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः**'' (18-46)। भक्तिप्रधान कर्मयोग में भगवदर्पण कर्म और भगवान् के लिए कर्म किये जाते हैं अर्थात् अखिल कर्मों में ममता, आसक्ति और फलेच्छा को त्यागकर तथा यह सब कुछ ईश्वर का है और मैं भी भगवान् का ही हूँ और मेरे द्वारा जो कर्म होते हैं, वे सभी ईश्वर के हैं– ऐसा समझते हुए भगवान् की आज्ञानुसार उनकी प्रसन्नता के लिए शास्त्र में उपदिष्ट कर्म करना ही भक्ति प्रधान कर्मयोग है। इस प्रकार तीनों प्रकार के कर्मयोग का मिश्रित रूप ही निष्काम कर्मयोग है, जिसे ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मन्त्र में संकेतित किया गया है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

अतः गीता के अनुसार निष्काम कर्मयोग से सिद्ध मनुष्य को अपने स्वरूप का बोध हो जाता है, क्योंकि उसमें संसार का आकर्षण और जड़ता नहीं रहती। इसका कारण यह है कि राग–द्वेष–पूर्वक सांसारिक विषयों का सेवन करने से ही अन्तःकरण अथवा मन में अशान्ति या हलचल होती है, परन्तु कर्मयोगी साधक राग–द्वेष से रहित होकर उन विषयों का सेवन करता है; अतः उसका अन्तःकरण (मन) स्वच्छ हो जाता है, जिसे गीता में ''**प्रसादमधिगछति**'' (2.64) कह कर संकेत किया गया है। इस प्रकार कर्मयोगी मनुष्य का सम्बन्ध संसार से नहीं रहता, क्योंकि उसकी इसके (संसार के) प्रति कामना और ममता दोनों नहीं होती और वह सर्वथा शान्ति को प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः जब मनुष्य बाह्य कर्मों का त्याग न करके कर्म करता हुआ मन में उस कर्म के प्रति स्थित कर्मफल की कामना का त्याग कर देता है, तभी कर्मयोगी बनता है। गीता के अन्तिम अध्याय में भी 'शास्त्रविहित कर्म करना कर्त्तव्य है', इसी भाव से आसक्ति और फल का त्याग करते हुए उसका पालन करना ही सात्त्विक त्याग माना गया है, यथा–

www.thearyasamaj.org

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥
(18.9)

तथा कर्मफल का त्याग करने वाले को ही गीता त्यागी मानती है, क्योंकि शरीरधारी मनुष्य के द्वारा समग्रता से सभी कर्मों का त्याग किया जाना सम्भव नहीं है (18.11)। इस प्रकार गीता के अनुसार यज्ञ, दान एवं तपरूप कर्मों को तथा सम्पूर्ण सांसारिक कर्त्तव्य कर्मों को आसक्ति और कर्मफलों का त्याग करते हुए अवश्य करना चाहिए। यही गीता का निश्चित एवम् सर्वोत्तम मत है और निष्कर्षतः गीतोक्त निष्काम कर्मयोग है, यथा भगवान् श्रीकृष्ण अठारहवें अध्याय में अर्जुन को अपना अन्तिम निर्णय बताते हुए कहते हैं–

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥
(18. 6)

अतः मनुष्य को निषिद्ध कर्मों, काम्यकर्मों, तृष्णा, स्वार्थहेतु दूसरों से सेवा करवाना, सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों में आलस्य और कर्मफल की इच्छा का त्याग करते हुए तथा सांसारिक सभी पदार्थों (वस्तुओं) एवं कर्मों में ममता, आसक्ति और संसार शरीर एवं सभी अन्य कर्मों में सूक्ष्म वासना तथा अहंभाव का सर्वथा त्याग करते हुए कर्त्तव्यपरायण होना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य के प्रति असावधानी नहीं करनी चाहिए न ही प्रमाद करना चाहिए, प्रत्युत सब प्रकार की इच्छाओं, कामनाओं का सर्वथा परित्याग करके स्वयं को भगवदर्पण करके निष्ठा और लगन से अपने कर्मों को करना चाहिए। यही गीता का उपदेश है और यही संक्षिप्त शब्दों में गीता का निष्काम कर्मयोग है। इसी कर्मयोग से व्यक्ति ज्ञाननिष्ठा के बिना भी सीधे परमसिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि सकाम कर्म करने वाले को तो गीता में तुच्छ बुद्धि वाला बताया गया है (3.6)। भला वह मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकता है। अतः निष्काम-कर्मयोग में ही मनुष्य की निष्ठा होनी चाहिए। वस्तुतः सभी लौकिक वस्तुओं का सर्वथा त्याग की भावना से उपभोग करते हुए निःस्वार्थ होकर कर्त्तव्य-परायण होना ही सच्चा कर्मयोग है और वही कर्म में निष्कामता है। अन्ततः हमारी यही कामना होनी चाहिए कि हम सब भारतवासी इस निष्काम कर्मयोग के लिए कृतसंकल्प हों, जिससे हमारे समाज व राष्ट्र का सर्वविध मङ्गल हो और सर्वत्र सद्भाव एवं कर्मनिष्ठा का प्रसार हो, तभी गीता के निष्काम-कर्मयोग का निम्न उपदेश फलीभूत होगा–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

–संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

www.thearyasamaj.org

रामसेतु

–डॉ. रामसनेही लाल शर्मा यायावर–डी. लिट्.

मनुज, दनुज कपि, भालु, सुर, संस्कृति रक्षा–हेतु।
सबकी निष्ठा ने गढ़ा सिंधु वक्ष पर सेतु॥

नारी–रक्षा के लिए, जुड़े प्राण से प्राण।
बंधा सिन्धु तब तीर पर, तैर गए पाषाण॥

अभियंत्रण कौशल–कला, निष्ठा का दृढ़ हेतु।
भारत का गौरव विपुल, कहे राम का सेतु॥

उत्तर दक्षिण जुड़ गए, फहरा संस्कृति–केतु।
वैष्णव शैव मिलन हुआ, बना समन्वय–सेतु॥

बे पल पूजित बन गए, कालजयी विश्वास।
हुआ धन्य नल–नील से, सदियों का इतिहास॥

अभियंत्रण नल–नील का ले जन–जन की शक्ति।
मूर्तिमान है सिन्धु में, भारत की दृढ़ शक्ति॥

विनय न मानी सिन्धु ने, रहा न अन्य विकल्प।
उठा गरज तब राम में, जन–जन का संकल्प॥

संस्कृति निष्ठा, नीति बल, लोक–धर्म इतिहास।
साक्षी है इस सेतु का, जन जन का विश्वास॥

जब–जब निष्ठा पर हुआ, कुत्सित कुटिल प्रहार।
घट–घटवासी राम का, कण्ठ उठा हुंकार॥

एक तरफ थी धूर्तता, सत्ता बल के साथ।
एक तरफ विश्वास है, राम कृपा का हाथ॥

जनबल, मनबल, बुद्धिबल, आत्मा का विश्वास।
रामसेतु हित जुड़ रहे, नीति धर्म इतिहास॥

– 86, तिलकनगर, वाई पास रोड, फीरोजाबाद–283203

www.thearyasamaj.org

सन्त रविदास एवं मानवीयता

—सुश्री अरविन्दर कौर

संत शब्द 'सत' का पर्यायवाची है। 'सत्य' को पूरी तरह अपनाकर उसी के अनुसार अपने जीवन का निर्माण करने वाला मनुष्य 'संत' कहलाता है। संत और भक्त में इतना ही अन्तर है कि भक्त भावप्रवण रामोपासक है तथा संत आचारवान्, विचारशील समाजसेवी व्यक्ति है। 'संत' को जहाँ एक तरफ धार्मिक व्यक्ति माना जाता है वहीं दूसरी तरफ ऐसा साधक, जिसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है तथा तीसरी तरफ एक उपदेशक भी है जिसका उपदेश सम्पूर्ण मानव समाज के लिए कल्याणकारी भी हो।

भक्ति आन्दोलन के द्वीप-स्तम्भ भक्त कबीर, पीपा, दादू; जैसे सन्त महात्माओं को जन्म देने वाली इस भारतभूमि पर कर्मयोगी संत शिरोमणि रैदास का नाम सम्पूर्ण भारतवर्ष में तथा मध्यकाल के गणमान्य स्वामी रामानन्द जी के बारह शिष्यों में सम्मानपूर्वक लिया जाता है। इनके विलक्षण व्यक्तित्त्व में 'स्वतन्त्र विचारक'[1] उदार धर्मगुरु, महान् समाज सुधारक, परम संत[2] के समस्त गुण विद्यमान थे।

संत रैदास भी कबीर की भांति समाज की विसंगतियों, विरूपताओं और संत्रासों का स्वयं भोक्ता रहे हैं। मानव-मन की पहचान तथा गहरी मानवीय पीड़ानुभूति ने उन्हें जहां जाति-पांति, ऊँच-नीच, नारी-पुरुष के भेद-भाव से ऊपर उठाया था वहीं वे मानवीय समता पर भी ज़ोर देते रहे हैं। इनका नाम ऐसे कवियों में अग्रगण्य है जिन्होंने शोषित, पीड़ित, दलित मानवता को वाणी दी। साधारणत: हम देखते हैं कि अज्ञानता के कारण समाज में चतुर्दिक् विषमता का ऐसा वातावरण फैल जाता है कि मानवीय एकता एवं समता का भाव तार-तार होने लगता है। मानव-समाज अहंकार एवं हिंसा की आग में जलकर विनाश की स्थिति पर पहुँच जाता है।

इस विनाश और हिंसा से देश और समाज को बचाने के लिए प्रेम एवं मानवीय एकता के मार्ग का अवलम्बन करना आवश्यक है, जिसका उपदेश विद्वानों एवं विचारकों ने समय-समय पर दिया है एवं समाज में फैली विकृतियों को दूर करने का भरसक प्रयास किया है। रविदास जी ने भी अपनी वाणी में मानव को मानव से जोड़ने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर सदाचारक जीवन-पद्धति अपनाने के लिए कहा है जिसका मूल-आधार सामाजिक नैतिकता है। वह कहते हैं कि मनुष्य आचरण और महानता की सर्वश्रेष्ठ कसौटी नम्रता है, जो मनुष्य को उदार बना कर उसमें अहं की भावना समाप्त करती है, साथ अपने-पराये का भेद मिट कर मनुष्यता का दायरा और भी विस्तृत

1. संत रविदास: विचारक और कवि; प्रणेता-पदम गुरचरन सिंह, 43.

2. संत कबीर; कबीर ग्रन्थावली; पृ. 231.

www.thearyasamaj.org

हो जाता है। अगर यही भावना मानवीय समाज में घर कर जाए तो फिर काल्पनिक स्वर्ग के लिए लोग भटकेंगे नहीं इस पर रैदास जी कहते हैं–

जब हम होते तब तूं न ही।
अब तू है मैं न ही॥[3]

रविदास जी समाज-सुधार के लिए आत्मिक उन्नति पर बल देते हैं। उन्होंने मनुष्य को स्वः-सुधार के लिए प्रेरित कर उसी को आधार बना कर बुरे-भले, मित्र-शत्रु का भेद समाज में मिटाने का यत्न किया क्योंकि जब तक अद्वैत-भावना नहीं पनपती तब तक मनुष्य दूसरे को अपना नहीं बना सकता। इसलिए आवश्यक है कि मानवीय-समता की भावना रखते हुए संसार को एक कुटुंब के रूप में माना जाए जैसे रैदास मानते हैं–

शत्रु जग में कोई न ही सब हो अपने मीत।
रविदास सबन सो राखिए निज कुटंभ सी प्रीत॥[4]

रविदास अपनी साखियों में बार-बार इस विषय पर भी लौटते हैं कि जाति-पांति कुछ नहीं है, सभी मनुष्य ईश्वर की संतान हैं। कभी वे इसे मानवजाति का रोग ठहराते हैं और कभी कर्म को ही जाति का निर्धारक बनाते हैं, उन्हें वे लोग अज्ञानी प्रतीत होते हैं जो किसी व्यक्ति को निम्न जाति का समझते हुए उस पर अत्याचार करते हैं–

जन्म जात मत पूछिए, का जात अरु पात।
रविदास 'पूत' सब प्रभु के, कोउ नंहि जात कुजात॥[5]
जात पात के फेर मंहि उरझि रहइ सब लोग।
मानवता कूँ खात हुई 'रविदास' जाति का रोग॥[6]

समाज में समता की स्थापना के इसी उद्देश्य से ही प्रेरित होकर रविदास जी ने चारों वर्णों की नए ढंग से परिभाषा की है। उन्होंने स्पष्ट किया कि ब्राह्मणकुल में जन्म लेने से ही कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता, जो व्यक्ति विषय-विकारों से दूर होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, वही ब्राह्मण है। जो दीन-दुखियों के लिए अपने प्राण न्योछावर कर देता है वही क्षत्रिय है और जो नेक कमाई करता है वही वैश्य है तथा जो अत्यन्त पवित्र है, सेवा कार्य करता है और अहंकार से रहित है, वही सच्चा शूद्र है–

रविदास जोड वेत्ता ब्रह्म कर सोई ब्रह्मन जान।
ब्रह्म न जोड जानिहि, तउ न ब्रह्मन मान॥[7]
दीन दुखी के हेत जऊ, बारै अपने प्रान।
रविदास उह नर सूर कौ, सांचा छत्री जान॥[8]
रविदास जड़ अति पवित्र है, सोई सूदर जान।
जउ कुकरमी असुध जन, तिन्हही न सूदर मान॥[9]

---

3. संत गुरु रविदास वाणी; सम्पादक डॉ. बी. पी. शर्मा; संवत् 2035, पृ. 38.
4. संत गुरु रविदास वाणी; सम्पादक डॉ. बी. पी. शर्मा; संवत् 2035, पृ. 40.
5. रविदास दर्शन; सम्पादक-आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद; 1973, साखी-120.
6. रविदास दर्शन; सम्पादक-आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद; 1973, साखी-121.
7. रविदास दर्शन; सम्पादक-आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद; 1973, साखी-136.
8. रविदास दर्शन; सम्पादक-आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद; 1973, साखी-138.
9. रविदास दर्शन; सम्पादक- आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद; पृ.-139.

www.thearyasamaj.org

संत रैदास जी ने मानवता के आधार पर सभी मनुष्यों को एक धरातल पर खड़ा किया। वह मानते हैं कि 'आदम सब है समान' और इस तरह उन्होंने मनुष्य एकता को और दृढ़ किया–

जब सब कर कोऊ हाथ परा, दोउ नैन दीओ कान।
रविदास पृथन कैसे भये, हिन्दु मुस्लमान॥[10]

उनके अनुसार मन्दिर-मस्जिद और राम-रहीम में कोई अन्तर नहीं है। यह अन्तर केवल मनुष्य के बनाए हैं–

रविदास हमारा राम, जोई सोई है रहिमान।
कावा नाभी जानि जहिं, दोऊ एक समान॥[11]

मानवतावाद ही एक ऐसा साधन है जो ऐसे समाज का सृजन करता है जिससे सदाचार, समता तथा नैतिकता की नींव का निर्माण होता है। संत रविदास समस्त मानवजाति का उपकार तथा उनमें समता की भावना चाहते हैं; जिसके लिए एक सदाचारी एवं मानव-मूल्यों से सुरक्षित समाज का निर्माण आवश्यक है।

संत रविदास की वाणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनकी वाणी में मुख्यतया मानव-जगत् में व्याप्त विषमता के स्थान पर समता की स्थापना और प्रत्येक मनुष्य को उचित मानवीय सम्मान देने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त हुई है। रविदास स्वयं एक ऐसे वर्ग से ऐसे समय में आए थे जो रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज में अनेक प्रकार के भेद-भाव और दुर्व्यवहार झेल रहा था तथा मानवीय गौरव की उपलब्धि के लिए छटपटा रहा था जैसे–

जाती ओछी पाती ओछी, ओछा जनम हमारा।
राजा राम की सेव न कीनी, कहि रविदास चमारा॥[12]

परन्तु संत रविदास का काव्य निम्न दृष्टि से देखे जाने वाले जन के प्रति समाज की हीन और उपेक्षित दृष्टि का विरोध कर, घृणा और सामाजिक प्रताड़नाओं का बंधन तोड़ कर एकता का संदेश देता है।

संत रविदास ऐसे महान् संत हैं जिन्होंने सभ्यता को संवारने में सहयोग दिया। इनका सारा जीवन तप और त्याग से परिपूर्ण, देशोत्थान, धर्मरक्षा, समाज-कल्याण एवं मानव-समभाव के सिद्धान्त को व्यापक रूप में समाज का अनिवार्य प्रदेय बनाने में व्यतीत हुआ। रविदास अपनी बात इस अंदाज में कहते हैं कि उसका प्रभाव भावुक हृदय के साथ-साथ कठोर या हृदयहीन अभावुक पर भी पड़ता है। रविदास जी ने समाज को समता का तथा एकता का जो अमर संदेश दिया है यदि उसे पूरी तरह अपना लिया जाये तो सारे मतभेद, आपसी झगड़े, वैरभाव तथा पाप सब समाप्त हो जाएं।

– शोध-छात्रा, मकान नं. 756, मोहल्ला कमालपुर, जालन्धर रोड़, होशियारपुर।

---

10. रविदास दर्शन; सम्पादक- आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद; पृ.-118.
11. रविदास दर्शन; सम्पादक- आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद; पृ.-121.
12. सन्त गुरु रविदास वाणी; सम्पादक- डॉ. बी. पी. शर्मा, सम्वत् 2035, पद-45.

www.thearyasamaj.org

विविध समाचार

➽ **धार्मिक परिक्षाओं के लिए आवेदन आमंत्रित –**

वर्तमान समय में आमजन व छात्र-छात्राओं में धार्मिक एवं नैतिक भावना भरने और बौद्धिक, साहित्यिक एवं धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय की ओर अभिरुचि उत्पन्न करने की दृष्टि से महर्षि दयानन्द शिक्षा परिषद् द्वारा 'आर्यरत्न' और 'आर्यभूषण' नाम से धार्मिक परिक्षाओं का आयोजन प्रतिवर्ष पत्राचार माध्यम से किया जाता है। किसी भी परीक्षा में कोई भी नागरिक अपनी योग्यतानुसार (जो हिन्दी भाषा पढ़ना-लिखना जानता हो) इन परीक्षाओं में बैठ सकता है।

परीक्षाएं पत्राचार माध्यम से घर बैठे दे सकते हैं। उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को आकर्षक प्रमाण-पत्र (उपाधि-पत्र) दिये जायेंगे। इस वर्ष ये परीक्षाएं दिसम्बर 2013 में आयोजित हो रही हैं। परीक्षाओं के लिए आवेदन प्राप्ति की अंतिम तिथि 31 अक्तूबर, 2013 है। कोई भी आर्य समाज, संस्था, विद्यालय, गुरुकुल आदि अपने यहां केन्द्र स्थापित कर सकता है। परीक्षा शुल्क 'आर्य रत्न' -40 रु., 'आर्य भूषण' - 50 रु. रखा गया है। परीक्षा शुल्क पोस्टल आर्डर (आई. पी. ओ.) या नकद जमा करवाया जा सकता है। परीक्षा शुल्क नरेश सिहाग के नाम आवेदन पत्र के साथ ही भेजें। जो कोई भी धार्मिक परीक्षा देना चाहता है वह सादे कागज पर परीक्षा का नाम लिखकर अपना पूरा नाम, पिता का नाम व पत्राचार का पूरा पता साफ-साफ देवनागरी (हिन्दी) लिखकर कार्यालय परीक्षा नियंत्रक महर्षि दयानन्द शिक्षा परिषद् गुगनराम सोसायटी भवन, 202-पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) को भेज दें। **–परीक्षा नियंत्रक, नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट, मोब.: 09466532152, 09255115175**

➽ **आर्यसाहित्य पुरस्कारों हेतु प्रविष्टियाँ आमन्त्रित –**

आर्यसमाज में अनुसंधान, लेखन, प्रकाशन व सम्पादन परम्परा और महर्षि दयानन्द व आर्य-समाज के सिद्धान्तों को प्रगति देने के उद्देश्य से गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (पंजी.) ने स्मृतिशेष चौ. गुगनराम सिहाग, उनकी छोटी बहन स्मृतिशेष गीना देवी व स्मृतिशेष श्रीमती रज्जी देवी नन्दाराम सिहाग की पावन स्मृति में तीन साहित्य पुरस्कार प्रारम्भ किये गये हैं। ये साहित्य पुरस्कार प्रत्येक वर्ष दिये जाते हैं। इन पुरस्कारों का उद्देश्य आर्यसमाज में सुन्दर, संग्रहणीय, मौलिक हिन्दी, संस्कृत इत्यादि भाषा में अधिक से अधिक गद्य व पद्य साहित्य के प्रचार-प्रसार में सहायक वैदिक साहित्य, योग, प्राकृतिक चिकित्सा, शोध प्रबंध, भजन संग्रह, काव्य, आयुर्वेद इत्यादि के लेखकों, प्रकाशकों व सम्पादन को प्रोत्साहन करना है। भारतवर्ष के प्रत्येक राज्य के तीन साहित्यकारों के लिए तीनों पुरस्कार अलग-2 रूप से आरक्षित हैं। स्वर्गीय

www.thearyasamaj.org

लेखक/ साहित्यकार की प्रकाशित कृति को उनके पुत्र, पुत्री, पति, पत्नी व उत्तराधिकारी भी भेज सकते हैं।

इन पुरस्कारों के लिए कोई भी लेखक, सम्पादक, कवि, शोधकर्ता अपनी-2 पुस्तकें जो जनवरी 2006 से दिसम्बर 2013 तक के मध्य प्रकाशित हुई पुस्तकों की एक-एक प्रतियां, लेखक के दो चित्र, परिचय के साथ अपनी-2 प्रविष्ठियाँ व्यक्तिगत रूप से, कोरियर या रजिस्टर्ड डाक द्वारा 31 जनवरी, 2014 तक सोसायटी के कार्यालय में भेजे जा सकते हैं। इसके लिए कोई प्रवेश शुल्क नहीं है। पुरस्कारों की कोई सीमा निश्चित नहीं है। **कार्यालय पता : सचिव, नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट, गुगनराम सोसायटी भवन, 202 पुराना हाउसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)।**

सोसायटी/निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम व मान्य होगा। एक लेखक/ सम्पादक कितनी भी रचनायें भेज सकता है। एक लेखक/ सम्पादक को उसकी एक से अधिक पुस्तकों पर भी पुरस्कार दिया जा सकता है। पुरस्कार हेतु प्राप्त पुस्तकें लौटायी नहीं जायेंगी। प्रत्येक पुरस्कार में सोसायटी की ओर से प्रशस्ति-पत्र व नगद पुरस्कार दिया जायेगा।

– सचिव, नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

दान– रु.

प्रिंसिपल सरोज बाला,
अमर निवास, कपूरथला। 5100/-

डॉ. एस. आर. लाम्बा,
लाम्बा नर्सिंग होम, धर्मपुर। 5000/-

श्री भागमल महाजन धर्मार्थन्यास,
विखरोली, मुम्बई। 3000/-

श्री विश्वनाथ जी सिंघानिया,
मालवीय नगर, जयपुर। 1100/-

वार्षिक सदस्यों से शुल्क प्राप्ति– रु.

एडवोकेट सजीवकान्त शर्मा,
डी. सी. रोड, होशियारपुर। 1000/-

श्री ओमप्रकाश सूद, राम गली, नज़दीक
बहादुरपुर गेट, होशियारपुर। 500/-

श्री राहुलदेव सयाल,
सिविल लाईन्ज़, होशियारपुर। 500/-

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रति सप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ।

जुलाई, 2013 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ किया गया।

वधाई –

संस्थान के कर्मिष्ठ श्री रवीन्द्र कुमार के सुपुत्र चिरंजीव श्री प्रेम सिंह का शुभ विवाह सौभाग्यवती रुचि के साथ दिनांक 14.7.2013 को गांव दखनेहड़, जिला मण्डी (हि. प्र.) में सम्पन्न हुआ। संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से हार्दिक बधाई।

पंजाब विश्वविद्यालय पटल के अधीक्षक श्री रामजीवन लम्बी सेवा के बाद 30-6-2013 को सेवामुक्त हो गये। वे जीवन में स्वस्थ व प्रसन्न रहें, यह शुभकामना प्रकट की जाती है।

शोक-समाचार –

संस्थान की प्राध्यापिका डॉ. श्रीमती प्रभा किरण के बहनोई श्री राममूर्ति का 3-7-2013 को पटियाला में हृदयगति रुक जाने से आकस्मिक देहान्त हुआ।

संस्थान के सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री श्रीकान्त के श्वसुर श्री देशराज खन्ना का 2-7-2013 को होशियारपुर में देहान्त हुआ।

शोक संतप्त परिवारों के प्रति संस्थान के कर्मिष्ठ वर्ग की ओर से हार्दिक समवेदना प्रकट की जाती है तथा परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्माओं को शान्ति एवं सद्‌गति प्रदान करें तथा उनके शोकाकुल परिवारों को वियोग सहने की शक्ति प्रदान करें, यह प्रार्थना की जाती है।

॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

www.thearyasamaj.org

आदरणीय वयोवृद्ध श्रीविश्वनाथ जी पञ्चत्व में लीन–

बड़े खेद से लिखना पड़ रहा है कि विश्वेश्वरानन्द संस्थान की कार्यकारिणी के सदस्य व संस्थान के हितैषी व शुभचिन्तक श्री विश्वनाथ जी का 17 जून, 2013 को देहावसान हो गया। आपने 93 वर्ष की लम्बी आयु में एक सक्रिय जीवन जिया। आप संस्थान की कार्यकारिणी के लम्बे समय से माननीय सदस्य रहे और संस्थान की उन्नति और यहां के प्रकाशन के कार्यों में समय-समय पर अपने बहुमूल्य सुझाव देकर योगदान देते रहे। इसी विषय में आपका 13 जून का लिखा हुआ एक पत्र विश्वसंस्कृतम् के विषय में विश्वसंस्कृतम् के सम्पादक पण्डित इन्द्रदत्त उनियाल को प्राप्त हुआ। आप डी. ए. वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री सभा के वरिष्ठ उपप्रधान भी थे तथा सुप्रसिद्ध प्रकाशक राजपाल एंड सन्स के और आर्यसमाज की सहयोगी संस्था लाला दीवानचन्द ट्रस्ट के भी अध्यक्ष रहे।

आपका जन्म आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध आर्यनेता महाशय राजपाल जी के यहां लाहौर में हुआ और पूर्ण शिक्षा भी वहीं से प्राप्त की। पाकिस्तान बन जाने पर आपने अपना पैतृक व्यवसाय प्रकाशन का कार्य पुनः दिल्ली में स्थापित किया। आपका डी. ए. वी. और आर्यसमाज से अटूट रिस्ता था। आपने सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक क्षेत्र में अपनी सेवाओं से जनमानस में विशेष स्थान बना लिया था। आपने एक कर्मयोगी का जीवन जीते हुए अपनी मेहनत, विवेक और सहृदयता से प्रकाशन कार्य, समाज सेवा एवं लेखन और प्रकाशन में विशेष कीर्तिमान स्थापित किये। श्री विश्वनाथ जी ने बालकथा, कविता, लेख, संस्मरण तथा अनुवाद कार्य द्वारा साहित्य की श्रीवृद्धि में भी अपना अमूल्य योगदान दिया।

इस दुःखद अवसर पर संस्थान की कार्यकारिणी तथा संस्थान के सभी कार्यकर्ताओं की ओर से दुःखी परिवार के प्रति समवेदना प्रकट की जाती है तथा परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

– संचालक

www.thearyasamaj.org

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाइटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-७-२०१७ को प्रकाशित।